मन्नू भण्डारी की रचनाएँ

एक इंच मुस्कान	(राजेन्द्र यादव के साथ)
'आपका बंटी'	(उपन्यास)
कलवा	(बाल-उपन्यास)
बिना दीवारों के घर	(नाटक)
तीन निगाहों की एक तस्वीर	(कहानियाँ)
मैं हार गई	"
एक प्लेट सैलाब	"
यही सच है	"
श्रेष्ठ कहानियाँ	"
प्रिय कहानियाँ	"

बिना दीवारों के घर
टक)

मन्नू भण्डारी

अक्षर प्रकाशन प्रा० लि०

द्वितीय संस्करण : १९७३
मूल्य : आठ रुपये

प्रकाशक
अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
२/३६, अन्सारी रोड, दरियागंज दिल्ली

मुद्रक
जयभारत कम्पोजिंग एजेंसी, मौजपुर
नव प्रभात प्रिंटिंग प्रेस, बलबीरनगर दि

पात्र

1. अमित
2. शोभा
3. मीना
4. जयन
5. जीजी
6. बंसी
7. नौकर
- डॉक्टर

10. सेठ मंगलनाथ
11. शुक्ला
12. श्रीमती शुक्ला
13. चावला
14. श्रीमती चावला
15. चौधरी
16. श्रीमती चौधरी

प्रथम-अंक

(पहला दृश्य)

(पर्दा उठता है। अजित का ड्राइंग रूम। अस्त-व्यस्त-सा। सवेरे के आठ बजे हैं। भीतर से तानपूरे पर आलाप लेता हुआ नारी-स्वर सुनाई देता है। अजित कुछ गुन-गुनाता हुआ प्रवेश करता है। चेहरे पर हजामत का [illegible] है, हाथ में खाली रेजर। इधर-उधर कुछ [illegible] स्वर में पुकारता है।)

[illegible] स्वर पूर्ववत [illegible]

[illegible]

अजित : एक घंटा हो गया कहीं ब्लेड का पता नहीं। और तु
कि वहाँ बैठकर बसान रही हो

शोभा : ओ हो-ऽऽ। तो अब आपकी चीज़ें ठिकाने पर रखने
काम भी मेरा ही है ? (दराज से ब्लेड निकालकर दे
है।)

अजित : अरे, मेरी चीज़ तुम्हारी चीज़ क्या होता है ? सारी
की चीज़ें हैं, और घर की हर चीज़ ठिकाने पर है
नहीं, यह देखना औरत का काम है। बोलो, है या नहीं ?
बोलो— बोलो—

शोभा : अच्छा, मान लिया; है। अब ज़रा यह भी बता दीजिए
कि घर के आदमी का क्या काम है ? घर की हर चीज़
को इधर-उधर फेंकते फिरना और फिर दुनिया-भर का
शोर मचाना, क्यों ?

अजित : हाँ-हाँ। (हँसता है) शोभा, समझती तुम सब हो !
अरे, बीवी अपनी बड़ी समझदार है। (भीतर से आवाज़
आती है : ममी, ऽऽ—ममी; हमारे मोज़े कहाँ रखे हैं
(शोभा अजित को देखती है)

शोभा : लो, अब बिटिया के मोज़े नहीं मिल रहे।

अजित : उसे समझाओ, भई, कि अपनी चीज़ सम्हालकर रखा
करे। यह शिक्षा तो तुमको देनी चाहिए उसे कम से कम।

शोभा : (जाते-जाते) अच्छा जी, तो आप यह कह रहे हैं ?
लापरवाही से चीज़ें रखने मे वह आपकी बिटिया नहीं,
गुरु है गुरु। (प्रस्थान)
(अजित जल्दी-जल्दी

विना दीवारों के घ

(नाटक

कर दिया, इसीलिए गुरु बुलाने आना पड़ा।

शोभा : चलो इसी बहाने आईं तो सही। (एक क्षण रुककर) क्या बताऊँ मीना, गाने को इसलिए मना कर दिया कि आजकल रियाज़ तो कर नहीं पाती ज़रा भी। इन चीज़ों में आप एक बार ढील डाल दें तो फिर नहीं होता।

मीना : वाह, मैं तो रेडियो पर अक्सर ही तुम्हारे गाने सुनती हूँ। देखो, गाना तुमको गाना है, मैं कोई बहाना नहीं सुनूँगी। रेडियो पर जब गा सकती हो तो हमारे कार्यक्रम में क्यों नहीं गा सकती?

शोभा : रेडियो की तुमने भली चलाई। वहाँ एक बार नाम लिख जाए तो बस फिर अपने आप बुलावा आता रहता है। फिर कुछ गीत उन लोगों ने रिकार्ड भी कर रखे हैं और मैं तो वहाँ भी मना कर दूँ, पर जयंत इस बुरी तरह पीछे पड़ जाते हैं—यों समझ लो एक तरह मजबूर कर देते हैं।

मीना : हमेशा जयंत मजबूर करते हैं, आज मैं मजबूर करने आई हूँ। मेरी इतनी-सी बात नहीं मानोगी?

शोभा : दस बजे तक तुम ठहर जाओ। अजित आ जाएँ तो तुम खुद उनसे कहना।

मीना : यह क्या? तुम्हें अजित की इजाज़त चाहिये।

शोभा : बस कुछ ऐसा ही समझ लो। इन्हें ने पसंद नहीं है। और मैं नहीं लिए—

मीना : (बड़े ही स्निग्ध स्वर में) कैसे हो, जयंत ?

जयंत : अच्छा ही हूँ।

मीना : लग तो नहीं रहे। देख रही हूँ, पहले से बहुत दुबले हो गए हो।

जयंत : दुबला ? (हँसता है) शायद तुम्हारी आँखों का फेर है। बल्कि यह बात तो मुझे तुमसे कहनी चाहिए थी। (कुछ रुककर) अच्छा, यह बताओ तुम्हारा काम कैसा चल रहा है ? कितने परिवारों का उद्धार किया, कितनी औरतों को मुक्ति दिलवाई ?

मीना : देख रही हूँ, आज भी मुझ पर तुम्हारी नाराज़ी ज्यों-की-त्यों बनी हुई है।

जयंत : नाराज़ी ? मैं तो कभी भी तुम पर नाराज़ नहीं था।

मीना : रघु कैसा है ? कभी मुझे भी याद करता है या नहीं ?

जयंत : कई बार ! (सिगरेट का पैकेट जेब में टटोलते हुए) ऐतराज़ न हो तो सिगरेट पी लूँ ? (मीना स्वीकृति में सिर हिलाती है) अब तो सिगरेट के धुएँ से परेशान करने वाला शायद कोई न होगा, क्यों ?

मीना : (बुझे-से स्वर में) हाँ, कोई नहीं करता। कभी-कभी मन करता है कि कोई करे तब भी कोई नहीं करता। (जयंत सिगरेट को होंठों से लगाकर जेब में लाइटर ढूँढ़ता है। मीना बीच मेज़ से दियासलाई उठाकर जयंत की सिगरेट जलाने उसके पास पहुँच जाती है। सींक की रोशनी में एक क्षण तक दोनों एक-दूसरे को देखते हैं। शोभा का प्रवेश। दोनों को इस रूप में देखकर ठिठक जाती है।)

शोभा : बुरे मौक़े पर घुस आई क्या ?

मीना : बैठिए।

जीजी : (बैठते हुए) इस समय तो बस से आने में प्राण ही निकल जाते हैं बस!

शोभा : आप बस में घुस कैसे लेती हैं इस समय, मुझे तो इसी में आश्चर्य होता है। आप शाम को क्यों नहीं जाती सत्संग में।

जीजी : सत्संग में सवेरे न जाने से मुझे लगता है जैसे सारा दिन बिगड़ गया। (मीना की ओर) आप कलकत्ता तो नहीं रहती शायद?

मीना : जी, अभी आई हूँ। (उठते हुए) अच्छा, अभी तो चलूँगी। (शोभा से) तो मैं दस-साढ़े दस बजे के बीच अजित को फोन करूँगी! थो थोड़ी भूमिका तुम बाँध-कर रखना।

जयंत : तुम्हें जाना किधर है, मीना?

मीना : यहाँ से तो चौरंगी ही जाऊँगी।

जयंत : चलो, तो मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ (शोभा से) और हाँ देखो, मेहता साहब एक नौकर भेजेंगे। बात करके देखना। अच्छा जीजी, इन्हें जरा छोड़ आऊँ।
(नमस्ते करके दोनों चलने लगते हैं। जीजी भीतर चली जाती हैं।)

जयंत : तुम्हारी क्लास कितने बजे है?

शोभा : ग्यारह से।

जयंत : हो सका तो मीना को छोड़कर एक चक्कर लगा लूँ। साढ़े ग्यारह पर मुझे इधर ही किसी से मिलने जाना है।

शोभा : फिर कब आ रही हो, मीना? आज के आने को मैं आना नहीं मानूँगी, समझी?

अजित : पर तुम तो उसके लिए पहले ही मना कर चुकी हो
कल ही तो कोई आया था बुलाने ।

शोभा : इसीलिए तो वह खुद आई ।

अजित : और तुमने हां भर दी होगी ?

शोभा : (भरपूर नजरों से देखते हुए) नहीं,

अजित : क्या कहा ?

शोभा : कह दिया मेरे पास समय नहीं है ।

अजित : हाँ-ऽ, और क्या ? आखिर कहाँ-कहाँ जाएँ और क्या-२
करें ? कॉलेज, बच्चों और घर, यही काफी है । फिर
इन सब में जाने लगो तो कोई अन्त ही नहीं ।
बुरा तो नहीं माना ?

शोभा : माना ही होगा तो क्या कर सकती हूँ ?
सब खुश नहीं रखा जा सकता ।

(टेलीफोन की घंटी बजती है । अजित उठाता है ।)

अजित : हलो-ऽ—जी, जी हाँ ।—जयंत बाबू ? इस समय तो वे
नहीं हैं, आये थे, चले गये । क्या ? साढ़े ग्यारह
फोन करने को कहा था ?—नौकर ! जी हाँ,
चाहिए । आ तो जाना चाहिए, मकान
भर है ।—हाँ-हाँ, आता ही होगा ।
धन्यवाद । (फोन रखता है । शोभा
साढ़े ग्यारह तक रहने वाला था ?
तो कोई बात नहीं हुई । आए तो मीना
हाँ, नौकर की बात जरूर कही थी कि
नौकर भेजेंगे । और जाते समय यह
सका तो मीना को छोड़कर वापस
किसी से मिलना है

मीना : (हँसते हुए) इतना आऊँगी कि तुम तंग आ जाओगी। बस मुझे ज़रा फुरसत मिलने दो।

(जयंत और मीना जाते हैं। शोभा दरवाज़ा बन्द करके भीतर जाती है। कुछ देर रंगमंच खाली रहने के बाद फिर घंटी बजती है। शोभा आकर दरवाज़ा खोलती है। अजित का प्रवेश।)

शोभा : अरे, आप आ गए ?

(अजित बैग एक तरफ फेंककर बैठता है।)

शोभा : मीना आई थी।

अजित : (आश्चर्य से) मीना ? कितनी देर ठहरी ? हाँ, वह आजकल कलकत्ते आई हुई है। तो आई यहाँ !

शोभा : तुम्हें याद कर रही थी। अभी उसे कहीं जाना था, सो ठहरी नहीं, बाद में आएगी।

अजित : अच्छा-ऽ-! मुझे याद कर रही थी ? वैसे क्या हाल हैं उसके ?

शोभा : उसी समय जयंत भी आ गए।

अजित : जयंत, इस समय ? (ज़रा-सी भृकुटि चढ़ जाती है जिस पर शोभा का भी ध्यान जाता है। पर तुरन्त अपने को सहज बनाता हुआ) कोई ऐसी-वैसी बात तो नहीं हुई न ?

शोभा : नहीं-नहीं, बिल्कुल नहीं। जयंत ही उसे छोड़ने गए हैं। मुझे तो लगा दोनों के मन में हल्का-सा अफसोस ही है शायद।

अजित : क्यों, कोई ऐसी बात हुई क्या ?

शोभा : नहीं, बात तो नहीं हुई। ठहरी ही तो ज़रा-सी देर। मुझे कल शाम को अपने समारोह में गाने का निमंत्रण देने के लिए आगी थी।

क्या बात है भला ?

अजित : कुछ तो है ही। आखिर उनसे हमारा बहुत पुराना संबंध है। फिर वह यह न समझ ले कि जयंत से संबंध टूटने के कारण हमने भी उनसे संबंध तोड़ लिया। कल चली ही जाना।

शोभा : जाकर करूँगी क्या ? कोई गाना तैयार नहीं है, रियाज़ के लिए समय ही कहाँ मिल पाता है ?

अजित : अब ज़्यादा इतराओ मत। कितने ही गाने तुम्हारे तैयार हैं।

(घंटी बजती है। अजित उठकर दरवाज़ा खोलता है। एक अपरिचित व्यक्ति का प्रवेश। वह एक चिट्ठी देता है।)

अजित : (पत्र पढ़ते हुए) तो तुम्हें मेहता साहब ने भेजा है ?
(वह व्यक्ति स्वीकृति-सूचक सिर हिलाता है।)
क्या नाम है तुम्हारा ?

व्यक्ति : नाम तो साहब ने चिट्ठी में लिख ही दिया है।

अजित : ओह ! (एक क्षण उसका मुँह देखकर फिर पत्र में देखता है) ओह ! बंसीलाल। अच्छा, तो देखो, यहाँ काम करना होगा तुम्हें। पहले ही सारी बातचीत हो जाए तो ज़्यादा अच्छा रहेगा।

बंसी : हाँ साब ! ठीक ही रहेगा ?

शोभा : काम तो तुम सब करोगे न ?

बंसी : सबसे क्या मतलब है, साब, आपका ?

शोभा : [illegible]

अजित : हूँ ? तुम्हारी क्लास कब से है ?

शोभा : बारह से।

अजित : तो मेरे साथ तो तुम नहीं ही चलोगी।

शोभा : अभी से जाकर क्या करूँगी ? अभी तो मुझे अपना लैक्चर भी तैयार करना है।

(फिर फ़ोन की घंटी बजती है, अजित उठाता है।)

अजित : हलो-ऽ-ऽ—। ओह, कौन मीनाजी ? नमस्कार, नमस्कार! कहिए, कैसी हैं ? देखिए, आप आईं और हमसे मिले बिना ही चली गई ?—हाँ—हाँ—क्या ? मेरी इजाज़त कमाल करती हैं आप भी! बात यह है, मीनाजी, कि शोभा खुद जाना पसंद नहीं करती है आजकल। इन सब चीज़ों के लिए बहुत समय चाहिए न, और इतना समय वह निकाल नहीं पाती। यहाँ तो रोज कुछ न कुछ लगा ही रहता है। अब जिसके कार्यक्रम मे भाग न लो वही नाराज, इसीलिए—। डाँटकर भेज दूँ ? आपने क्यों नहीं डाँटा ? अरे मीनाजी, आजकल पति बेचारे को कौन गिनता है ? क्या कहा, मेरी ज़िम्मेदारी है ? बड़ी टेढ़ी ज़िम्मेदारी दे रही हैं आप! खैर, आपकी आज्ञा तो माननी पड़ेगी।—हाँ-हाँ, आ जाएगी। मैं ? जरूर साहब, मैं भी जरूर आऊँगा।- आप इधर कब आएँगी ? हाँ, जरूर आइए, खाली होते ही। अच्छा नमस्ते—(फ़ोन रखते हुए शोभा से) मीना का फोन था। कह रही थी जैसे भी हो शोभा को माना ही होगा। आप ज़ोर देकर भेजिए। (कुछ ठहरकर) सोचता हूँ, मीना के समारोह मे तुम चली ही जाओ।

शोभा : (हल्के ... मीना के समारोह में ऐसी

दीजिए, साब ? हम क्या बोलेंगे भला ?

अजित : बात यह है कि यह भी पहले से ही तय हो जाए तो अच्छा है। यों तुम्हारी लियाकत का थोड़ा सबूत तो मिल ही गया।

बंसी : तो फिर हम भी साफ बात ही करेंगे, साब ! बाजार आप किसमें करवाएँगे ?

शोभा : बाज़ार ? क्या मतलब ?

बंसी : (ज़रा सकुचाते हुए) मतलब यही कि अगर बाजार का सौदा-सुलुफ हम ही करेंगे तो ३०) लेंगे, वरना ४०) महीना।

अजित : तो तरकारी-भाजी में आप दस रुपया मारेंगे, क्यों ? हो दोस्त, बड़े ईमानदार !

बंसी : अरे साब ! दस रुपए के लिए बेईमानी करके कौन अपना लोक-परलोक बिगाड़े ! नौकर हैं तो इसका यह मतलब नहीं कि हमारा कोई ईमान ही नहीं। ये तो भाग से नौकरी करनी पड़ रही है, नहीं तो हम भी जात के अगरवाल बनिए हैं।

अजित : वाह, क्या बात है ! तुम नौकर कैसे हो सकते हो भला ? (एकदम खड़े होकर) आयो-आयो, कुरसी पर तशरीफ रखो।

बंसी : साब, मजाक तो करिए मत।

अजित : अच्छा जी, आप फिलहाल तो तशरीफ ले जा सकते हैं, ज़रूरत पड़ने पर हम बुलवा लेंगे। (नमस्ते करके चला जाता है) ये नौकरी करने आये हैं या लाटसाहबी ?

शोभा : मैं तो कहती हूँ अब नौकरों का यही हाल होने वाला है। नौकरों के पीछे भागने के बजाय हाथ से काम करना

शोभा : धोबी तो आता है, पर कोटवालों के बटन होते हैं उ
को टांका पड़ेगा। और चौका-बरतन।

बंसी : चौका-बरतन के लिए तो, साब, अलग से महरिन रख
पड़ेगी, वह हम नहीं करेंगे।

अजित : आप कपड़े नहीं धोएँगे, बरतन साफ़ नहीं करेंगे,
आखिर आप करेंगे क्या ?

बंसी : हमारे लायक जो काम होगा वह सब करेंगे, साब !

अजित : आपकी लियाकत ?

बंसी : यहाँ के मुख्य मंत्री के नौकरों की फेहरिस्त में हमा
नाम है, साब !

अजित : वाह, वाह, क्या खूब ! तब तो सचमुच ही बड़े लाय
आदमी हो, यार।

शोभा : अच्छा यह बताओ, खाना-वाना बनाना भी जानते हो
नहीं ?

बंसी : खाना ? आप भी क्या बात करते हैं, साब ! लोग
लोगों ने हवाई जहाज बना लिए और हम खाना नह
बना सकते ? (अजित, शोभा, हँसने लगते हैं) पर बा
यह है, साब, कि हम पहले जहाँ काम करते थे वहाँ ह
पका-पकाया खाना मिलता था। फिर यह काम, सा
है भी औरतों का। आदमी रसोई में चला भले ही जाए
जँचता जरा भी नहीं है।

अजित : सीम्स टु बी एन इन्टरेस्टिंग पर्सन ?

शोभा : अच्छा, यह बताओ, तनख्वाह क्या लोगे ?

(जीजी का प्रवेश। वे चुपचाप आकर खड़ी हो जाती
हैं।)

बंसी : हमारी

तो खुद, अप्पी तक को उसने इतना बिगाड़ रखा है कि बस।

(जीजी भीतर चली जाती है। शोभा यों ही अनमनी-सी अलमारी पर रखे अप्पी के खिलौने को हिलाने-डुलाने लगती है। जयंत का प्रवेश।)

जयंत : यह क्या, अप्पी स्कूल जाती है तो तुम उसके खिलौनों से खेलती हो?

शोभा : ओह! आ गये तुम? (हँसते हुए) अरे, खिलौनों से अब क्या खेलूँगी!

जयंत : हाँ, अब तो खिलाती हो।

शोभा : यह बताओ, रास्ते में क्या-क्या बातें हुईं मीना से?

जयंत : कुछ नहीं, बस यों ही इधर-उधर की!

शोभा : मामला फिर पट सकता है क्या? कहो तो कोशिश करूँ?

जयंत : इस मामले को तो छोड़ो तुम्हारे लिए जरूर एक मामला लाया हूँ, यदि पट जाए तो। यों है जरा मुश्किल।

शोभा : मैं तो पटी-पटाई हूँ बाबा, अब और किसी से नहीं पटाना।

जयंत : मीना को छोड़कर कॉफ़ी हाउस में बैठ गया था। वहीं पर साहनी साहब से मुलाकात हो गई। वे यहाँ के महिला विद्यालय के मंत्री हैं, उन्हें एक प्रिंसिपल की जरूरत है, मुझसे बताने को कह रहे थे। मुझे एकाएक तुम्हारा खयाल आ गया। कहो तो बात करूँ?

शोभा : हाय राम! मैं और प्रिंसिपल! कॉलेज की लुटिया ही डूब जाएगी।

जयंत : बस तुम्हारी यही आदत मुझे अच्छी नहीं लगती। जरा अपने ऊपर भरोसा रखना सीखो। तुम तो पढ़ाने का

जीजी !

अजित : मैं तो कुछ नहीं कहता हूँ शोभा से। (शोभा उसे घूरती है)

जीजी : तुम यह कहते हो, अजित ! शोभा तो फिर भी करती ही है बेचारी। तुम घर का कौन-सा काम करते हो ?

अजित : मैं—मैं— बहुत काम करता हूँ। यह घर ठीक से चलता रहे इसलिए नौकरी करता हूँ।

जीजी : अब केवल नौकरी करने से घर नहीं चलता, समझे। वह ज़माने गए, अजित, जब आदमी ने नौकरी कर ली और औरत ने घर का सारा काम कर लिया। पर अब औरत भी नौकरी करने लगी है तो मर्द को भी घर के काम में हाथ बँटाना पड़ेगा, समझे ?

अजित : कौन कहता है औरत से कि नौकरी करे ? छोड़ दे नौकरी। अब उसकी नौकरी के पीछे यह तो होगा नहीं कि पति, बच्चे, घर सब बेचारे मारे-मारे फिरें।

शोभा : क्यों, बीच में और कोई रास्ता ही नहीं है जैसे ? विदेशों में इतनी औरतें काम करती हैं, वहाँ क्या सब मारे-मारे ही फिरते हैं।

अजित : ओफ़्फ़ोह ! विदेश की बात तुम अपने देश में तो किया मत करो।

शोभा : क्योंकि वह तुम्हें माफ़िक नहीं आती, इसलिए न ?

अजित : अब तुम घंटा भर बैठकर कानून बघारोगी (घड़ी देखते हुए) मैं तो चला। ग्यारह बज रहा है, ऑफ़िस भी तो पहुँचना है (जाते हुए) अच्छा टा—टा—। (प्रस्थान)

जीजी : शोभा, जितना भी होगा तुमको ही अपने को ढालना होगा। यह अजित तो न [illegible], न बल। खुद

उजाला होता है तो कुछ वक्त बीत चुका है। अब संध्या के चार बजे हैं। रंगमंच खाली है। जीजी भीतर से प्रवेश करती हैं। अप्पी का बस्ता खुला पड़ा है, किताबें इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं।)

जीजी : लो, ये किताबें यहाँ फैला गई है। अपनी चीजें सम्हालकर रखना तो इस लड़की को कभी नहीं आएगा। अभी शोभा आएगी और बिगड़ेगी (सम्हालती है, इतने में घंटी बजती है) लो, आ गई लगता है। (अटैची वहीं छोड़ देती है और जाकर दरवाजा खोलती है)

(शोभा का प्रवेश)

शोभा : यह क्या, फिर अप्पी ने अटैची यहीं छोड़ दी ?

जीजी : छोड़ दी ? सारी किताबें फैली पड़ी थीं। उधर आकर बोली, बुआजी, पेंटिंग हमने कर ली है, तैयार कर दीजिए, पार्क जाएंगे। यहाँ आकर देखा तो पन्ना-पन्ना फैला पड़ा है, पानी, रंग, ब्रुश। इसे कभी अक्ल नहीं आएगी।

शोभा : गई वह पार्क ?

जीजी : हाँ-ऽ! बिट्टी, टोनी आए थे, उनके साथ चली गई।

शोभा : (हँसी आ जाती है) पाजी कहीं की ! दूध पिया या नहीं ?

जीजी : दूध पीने में वह कौन कम त्रिभूर मचाती है ? तुम्हारे लिए चाय ले आऊँ ?

: आप बैठिए जीजी, मैं खुद बनाकर लाती हूँ।

(चिट्ठियाँ देते हुए) तुम ये देखो, मैं लाई। पानी ... ही आई थी, खोलने ही वाला होगा।

लगती है फिर एकाएक कैसे कुछ याद आता है

रही हैं ? इनके पास कोई बैठे क्या ? इन्हें इधर दो साल से फुर्सत भी मिलती है अपने ऑफिस से ? सारे समय ऑफिस में रहते हैं, घर आते हैं तो ऑफिस खोलकर बैठ जाते हैं। बरसों से जयंत शाम को यहाँ आते हैं। पहले मीना भी आया करती थी, अब अकेले आते हैं। आप जितनी अनुभवी चाहे न होऊँ, पर थोड़ी परख आदमी की मुझे भी है।

जीजी : तुम नाराज मत हो, शोभा ! मुझे जैसा लगा कह दिया। (कुछ ठहरकर) कभी-कभी आदमी अपना सुख खो बैठता है, तो चाहता है सारी दुनिया का सुख लूट ले। पर अपनी इस भावना को शायद वह भी नहीं जानता।

शोभा : दुनिया का क्या सुख लूटेंगे बेचारे ! यों ऊपर से सभी ठाठ हैं, पर भीतर ही भीतर कितने दुखी और अकेले हैं। इसीलिए यहाँ आ जाते हैं। फिर मैं तो जब से आई हूँ तब से ही इन्होंने यह बात मेरे दिमाग़ में भर दी थी कि अजित-जयंत एक ही हैं।

जीजी : (कुछ रुककर) आजकल अजित को शायद इसका आना-जाना ज्यादा पसन्द नहीं। कुछ खिंचा-खिंचा ही रहता है इससे !

शोभा : इनकी आपने भली चलाई। ये तो आजकल सारी दुनिया से ही खिंचे-खिंचे रहते हैं। असल में ये अपनी नौकरी से बहुत परेशान हैं, तनख्वाह के लालच में इस कंपनी में काम ले तो लिया, पर लगा वहाँ इज्जत तो कुछ है ही नहीं। तो सब पर खिजलाते फिरते हैं। इन्हें मन लायक काम मिल जाय, आप देखिए, दो दिन में ठीक हो जाते हैं। वरना जयंत के बिना तो इनके गले में

(फ़ोन रखता है कि शोभा का प्रवेश)

शोभा : किसका टेलीफ़ोन था ?

अजित : (लापरवाही से) पता नहीं, तुम्हें पूछ रहा था कोई। कह दिया आध घंटे बाद कर लेना।

शोभा : कमाल करते हैं आप भी ! मैं यहीं तो थी। कौन था कम से कम नाम तो पूछ लेते।

अजित : क्यों भन्ना रही हो ? आधा घंटे बाद कर लेगा। तुम तो चाय पिलाओ गरम-गरम।

शोभा : मैं इस तरह तुम्हारा फ़ोन रख दूँ तो।

अजित : आजकल तुम बात-बात में मेरी बराबरी करने में क्यों लगी हो ? कह तो दिया कि कर लेगा आध घंटे बाद।

(शोभा चुपचाप चाय बनाती है।)

अजित : आज मन्नी के लिए नाच सीखने की व्यवस्था कर दी है। पर आकर ही सिखा देंगे सप्ताह में दो दिन।

शोभा : क्या लेंगे ?

अजित : चालीस रुपए (कुछ ठहरकर) तुमने गाना तैयार कर लिया ? नहीं किया हो तो कर लो। मोना यह न कहे कि आकर काम बढ़ा गई शोभा।

शोभा : रात को करूँगी। पर आप कल अपनी शाम खाली रख सकेंगे या नहीं ? आप नहीं चलेंगे तो मैं भी नहीं जाऊँगी।

अजित : एकदम खाली। अरे, मैं पहली पंक्ति में बैठकर तुम्हारा गाना सुनूँगा, समझीं।

(शोभा की हँसी छा जाती है।)

शोभा : (चाय पीते-पीते) एक बात पूछूँ ?

अजित : एक क्यों, सैकड़ों बातें पूछो। एक घंटे तक जो मरज़ी आए पूछो !

जयंत है कि झूठ-मूठ तुम्हें आसमान पर चढ़ाने की कोशिश करता रहता है।

शोभा : और तुम हो कि मुझे रात-दिन धरती पर घसीटने की कोशिश करते रहते हो! मैं पूछती हूँ, आखिर क्यों?

अजित : (उत्तेजित होकर) इसलिए कि मैं तुमसे ज्यादा तुमको, तुम्हारी योग्यता और तुम्हारी सीमाओं को समझता हूँ। एक घर तो तुम ठीक तरह से चला नहीं सकतीं, कॉलेज चला लोगी!

शोभा : तो तुम चाहते हो मैं अर्जी नहीं दूँ?

अजित : चाहने की बात क्या है, मैं ऐसा सोचता हूँ।

शोभा : मुझे तो पहले से ही मालूम था कि तुम मना ही करोगे।

अजित : पहले ही मालूम था तो फिर पूछा ही क्यों?

शोभा : इसलिए कि एक बार तुम्हारे ही मुँह से सुनना चाहती थी। मैं कुछ कहती नहीं, इसका यह मतलब नहीं कि मैं तुम्हें समझती नहीं। तुम्हारी हर बात, हर मनोभाव खूब अच्छी तरह समझती हूँ। मैं अर्जी दूँगी, और यह काम मुझे मिल गया तो दिखा भी दूँगी कि तुम जितना अयोग्य मुझे समझते हो, उतनी मैं हूँ नहीं।

अजित : (आवाज़ को संयत करके) तुमने बेकार ही यह बात चलाई, शोभा! जब तुम अपने बारे में, अपनी योग्यता के बारे में, इतनी आश्वस्त हो तब बेकार ही मुझे बीच में घसीटा। ऐसी हालत में तो न मुझे पूछने की ज़रूरत थी, न मेरी राय लेने की।

(शोभा चुपचाप चाय के बर्तन उठाकर अन्दर चली जाती है। अजित एक नई सिगरेट सुलगाकर सोफ़े पर लेट-सा जाता है। सिगरेट का धुआँ उसके चारों ओर छाने

जोजी : साढ़े पाँच बजे तक राह देख लो, आ जाए तो ठीक है, वरना तुम अकेली चली जाना।

शोभा : सो तो जाना ही होगा। पर वे आए क्यों नहीं ? मैंने तो पहले ही मीना को मना कर दिया था। मैं क्या जानती नहीं कि इन्हें यह सब पसंद नहीं है। तब क्यों कहा मीना से कि आ जाएगी ?

जोजी : शोभा, इतना नाराज नहीं होते। तुम तो जानती ही हो आजकल उसे ऑफिस के काम के मारे साँस लेने तक की फुर्सत नहीं है। जरूर वहीं फँस गया होगा।

शोभा : वहीं नहीं फँसे ! मुझसे नाराज हैं। यह नाराजी दिखाने का ढंग है। जहाँ अपनी इच्छा से कोई काम किया कि इनका मुँह फूला।

जोजी : (समझाते हुए) शोभा, इस तरह का आरोप लगाते हुए एक बार तो जरा सोचो। आखिर आज तुम जो कुछ हो वह अजित की बनाई ही तो हो। तुम्हारे मन में कोई 'अपनी इच्छा' जागे इस लायक भी तो तुम्हें अजित ने ही बनाया है, यह मत भूलो।

(फोन की घंटी बजती है। शोभा एकदम दौड़कर फोन लेती है।)

शोभा : हलो-ऽ-ऽ—ओह, तुम हो मीना !—मैं क्या करूँ, मैं बैठी इनकी राह देख रही हूँ। इनका कहीं पता ही नहीं। ऐं—अच्छा, तो मैं अकेली ही आती हूँ। (जोजी से) मैं जा रही हूँ, जीजी। ये भी आ जाएँ तो आप इन्हें वहीं भेज दीजिए।

जोजी : हाँ हाँ, जरूर भेज दूँगी !

शोभा : अप्पी लौटकर आए तो उससे डिब्बा ले लीजिए और

लगता है । धीरे-धीरे एकाएक अंधकार हो जाता है ।)

(दूसरा दृश्य)

(दूसरे दिन संध्या के पाँच बजे । ड्राइंगरूम खाली पड़ा है । जिस अलमारी पर डॉली का डिब्बा रखा था, उसके नीचे मेज़ रखी है, उसके ऊपर एक छोटी कुर्सी; डिब्बा गायब है । भीतर से शोभा तैयार होकर आती है । आते ही नज़र मेज़-कुर्सी पर पड़ती है । एक क्षण देखती रहती है । फिर हँसने लगती है ।)

शोभा : जीजी – जीजी –

(जीजी का प्रवेश)

शोभा : देखिए जीजी, हो गया डिब्बा गायब ? (जीजी को हँसी आ जाती है) बड़े कह रहे थे कि अपना मास्टरनीपन मत लगाया करो । देख लिया आपने ?

जीजी : लगता है आज इधर के दरवाज़े से ही निकल गई है ! शैतान कहीं की !

(शोभा उठकर मेज़-कुर्सी ठीक करती है । हँसती रहती है । फिर फ़ोन करती है ।)

शोभा : हलो-ऽ —। जी, मैं मिसेज़ अजित बोल रही हूँ ।—नहीं आए ? (गुस्से से फ़ोन रख देती है) देखिए जीजी, अभी तक इनका पता नहीं है ।

जीजी : शायद आता ही हो ।

शोभा : ख़ाक आते होंगे ! ऑफिस में हैं ही नहीं । आधा घंटे से तीन बार तो फ़ोन कर लिया । वे तो बारह बजे से ही गए हुए हैं बाहर ।

करना—मैं तो एकदम ही घबरा गया। कागज़-कुगज बटोरने में ऐसा लगा कि बिल्कुल भूल ही गया। लंच के बाद से उन लोगों के साथ ही था। बस वहीं से आ रहा हूँ।

जीजी : कम से कम तुम फोन ही कर देते और यह सब उसे समझा देते तो इतनी नाराज़ तो नहीं होती। न इतनी ऊटपटांग बातें ही सोचती। तुम जानते ही हो कि आजकल—

अजित : (ज़रा चौंककर) आजकल—आजकल क्या?

जीजी : (स्नेहपूर्ण स्वर में) तुम्हें थोड़ी समझदारी से काम लेना चाहिए, अजित! थोड़ा शोभा की भावनाओं का ख़याल रखना चाहिए, वरना फिर उसके दिमाग़ में—

अजित : क्या बात है, जीजी, क्या कहा शोभा ने?

जीजी : ऐसी कोई खास बात नहीं, पर एक बात उसके दिमाग़ में घर करती जा रही है, कि तुम्हें उसका घूमना-फिरना, पढ़ना, गाना यह सब पसंद नहीं है। और तुम इस सब में किसी न किसी बहाने से रुकावट डालते हो।

अजित : (एकदम हल्का होकर हँस पड़ता है) अरे जीजी, शोभा तो पगली है। फिर हर बात में मुझसे लड़ना तो उसने अपना स्वभाव बना लिया है। मैं उससे यह भी कहूँ कि आज हवा बहुत ठंडी है तो वह छूटते ही कहेगी 'मैं जानती हूँ कि आपको मेरा काम करना पसंद नहीं है।' यह सब मैंने ही तो उसे सिखाया है, वरना बरेली की दसवीं पास लड़की—साड़ी पहनना तो आता नहीं था उसे। मुझे पसंद न होता तो मैं पढ़ाता-लिखाता ही क्यों? शोभा को मैं ख़ूब अच्छी तरह जानता हूँ, ख़ूब

खाना खिलाकर सुला दीजिए।

जीजी : तुम आओ, मैं सब कर दूँगी।

(शोभा का प्रस्थान। जीजी भीतर जाती हैं। रंगमंच पर धीरे-धीरे अँधेरा होता है। फिर घंटी बजती है। जीजी भीतर से आकर बत्ती जलाती हैं, दरवाज़ा खोलती हैं। अजित का प्रवेश।)

जीजी : अब आ रहे हो तुम! कुछ होश भी रहता है तुम्हें, अजित?

(अजित थका हुआ-सा सोफ़े पर बैठ जाता है।)

अजित : क्या करूँ, जीजी, आज तो ऐसा फँस गया कि बस! शोभा क्या अप्पी को सुला रही है?

(आश्चर्य से) अजित! तुम्हें क्या कुछ भी याद नहीं रहता? शोभा का आज गाने का कार्यक्रम था कि नहीं तुम तो आए नहीं, कितना नाराज़ होकर गई है वह!

अजित : ओ गॉश! मैं तो बिल्कुल ही भूल गया। (एकदम घड़ी की ओर देखकर) अब तो कार्यक्रम ख़त्म होने वाला होगा। त्-त्

जीजी : तुम आख़िर गए किधर थे? चार बार तो उसने फ़ोन किया होगा!

अजित : (अजित सिर पकड़ लेता है) क्या बताऊँ, जीजी? मैं तो बिल्कुल भूल ही गया था। जैसे ही दफ़्तर पहुँचा जनरल मैनेजर का फ़ोन मिला कि जर्मन कंपनी के डाइरेक्टर से मिल लूँ। लंच उन्हीं के साथ लूँ और सारी बात-चीत भी कर लूँ। उन लोगों के साथ मिल-कर हमारी कंपनी एक नई मिल बिठाना चाह रही है, उसी सिलसिले में। बिना किसी तैयारी के बातचीत

काम सम्हालूँ, क्योंकि नौकरी करना उन्हें ऐसा लगता था जैसे कुलीगीरी करना हो। अब आप ही बताइए, एम० ए० एल-एल० बी० करके मैं दवाइयों की दुकान सम्हालता ? ऐसा ही था तो पढ़ाते नहीं, शुरू से दुकान ही करवाते।

जीजी : यही बात मैं कभी उन्हें भी समझाया करती थी। और वे कहते थे, 'कृष्णा, आखिर मैंने ही तो उसे पढ़ाया-लिखाया है, और अब वह मेरी ही बात नहीं मानता।' तुम भी तो उन्हीं के—

अजित : (बात बीच में ही काटकर) कहाँ की बात आप कहाँ खींच लाईं, जीजी ? वह दो पीढ़ियों का झगड़ा था जो हमेशा रहा है और हमेशा रहेगा। यहाँ तो ऐसी कोई बात नहीं है।

जीजी : (सोचते हुए) है अजित, है। यह शायद बनाने वाले और बनने वाले का संघर्ष है, जो दो पीढ़ियों के बीच भी हो सकता है और एक ही पीढ़ी के दो व्यक्तियों के बीच भी।

अजित : जीजी, देख रहा हूँ, आप तो बड़ी ऊँची-ऊँची बातें करने लगी हैं। पर मेरे और शोभा के बीच ऐसी कोई बात नहीं है। मैं उसे अच्छी तरह समझता हूँ।

जीजी : मैं तो खुद यही चाहती हूँ कि समझ सको, समझो। (कुछ ठहरकर) जयंत के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है

अजित : (चौंककर) क्यों, क्या बात हुई ?

जीजी : बात कुछ नहीं, बस मीना को देखकर लगा कि उनके अलगाव में दोष जयंत का ही रहा होगा। केवल सुन-सुनकर ही मैंने तो मीना के बारे में बड़ी गलत धारणा बना ली थी। कल उसे कुल दस मिनट के लिए देखा पर समझ लिया कि—

अजित : (बीच ही में) हाँ, गलती तो जयंत की ही थी। पर

उसका गुस्सा दूर करता हूँ। आज उस जर्मन को ऐसे रोब में कर लिया है कि बस। मैं तो इस चक्कर में हूँ कि किसी तरह वे लोग अपने यहाँ कोई काम दे दें। इस चिकचिक से छुट्टी मिले। आप देखिए तो अब ठाठ अपने अजित के।

जीजी : (हल्के से हँसकर) अच्छा तो मैं चलकर खा लूँ।

(जीजी उठकर भीतर जाती हैं। अजित एक सिगरेट निकालकर सुलगाता है, एक कश खींचकर गद्दी को तकिए की तरह रखकर पैर फैलाकर सोफ़े पर ही सोता है। किसी चीज़ के चुभने से उछलकर बैठ जाता है। पीछे से अप्पी की प्लास्टिक की गुड़िया निकल आती है।)

अजित : (गुड़िया को हाथ में लेकर) अरे वाह, तो आप हैं! क्या खूब! तुम्हारी अप्पी ममी आज तुमको यहीं छोड़कर सो गई, क्यों? चलो, तुम्हें भी तुम्हारी ममी के पास लिटा दें।

(अजित भीतर जाता है। दो मिनट बाद ही जयंत और शोभा का प्रवेश। जयंत के कंधे पर कैमरा लटका हुआ है।)

जयंत : आज तो तुमने कमाल कर दिया, शोभा! लगता है मिज़ाज बिगड़ा रहे तो ज़्यादा अच्छा गाया जाता है। (कैमरा उतारकर ठीक करते हुए) अच्छा, चलो, इसी बात पर तुम्हारी एक तस्वीर हो जाए। वहाँ वह कम-बख्ती तुम्हें काट देता था। (आवाज़ देता हुआ) अरे अजित! बाहर निकलो यार। देखो अपनी बीबी को बधाई तो दो।

शोभा : देखती हूँ जाकर, पता नहीं, ये आए भी या नहीं।

जयंत : हूँ-हूँ-हूँ—ठहरो, ठहरो ज़रा। (ठहर जाती है) हाँ, बस ऐसे ही। (अजित का प्रवेश। फ़ोटो उतारते देख

जब वह दूसरी शादी करके कभी गई तो मीना को भी थोड़ा नरम पड़ जाना चाहिए था। लेकिन उसने इसे मान-सम्मान का प्रश्न बना लिया।

जीजी : मैं मीना को दोष नहीं देती। कोई भी आत्म-सम्मान वाली औरत बिना बहुत बड़ी मजबूरी के ऐसी हालत में रहना पसंद नहीं करेगी।

अजित : देख रहा हूँ, जीजी, आप तो काफ़ी नए ज़माने की होती जा रही हैं।

जीजी : ले, इसमें नए ज़माने की क्या बात हुई? पति-पत्नि के बीच में जब भी कोई तीसरा आदमी आता है, यही नतीजा होता है।

अजित : सब जगह ऐसा कहाँ होता है? आदमी चाहे न सहे, औरत तो रो-धोकर सह ही लेती है।

जीजी : सहा न, हो सकता है किसी बहुत बड़ी मजबूरी में वह घर छोड़कर न जाए, पर एक छत के नीचे रहना ही तो साथ रहना नहीं होता। मन तो उनके अलग हो ही जाते हैं। बीच वाला व्यक्ति चाहे हट जाए, पर संबंधों में जो दरार पड़ जाती है वह कभी नहीं भरती।

अजित : बाद में तो जयंत को भी कुछ दिनों तक अफ़सोस होता रहा, पर उस समय तो आपस में कड़वाहट इतनी बढ़ गई थी कि अलग हो जाना ही अच्छा हुआ।

जीजी : (उठते हुए) भगवान अब भी उसे सद्बुद्धि दें। अपने अनुभवों से कुछ तो सीख ले। (प्रसंग बदलकर) तुम खाना अभी खाओगे या शोभा के साथ ही।

अजित : शोभा को आ ही जाने दीजिए, साथ ही खा लेंगे।

जीजी : कम से कम आज तो उसके साथ ही खाओ। इसी बहाने उसका गुस्सा कुछ तो कम होगा।

अजित : अरे जीजी, आने दीजिए आप उसे। पाँच मिनट में

अजित : घर मे घुसीं तब तो गुस्से का नाम निशान तक नही था चेहरे पर। मुझे देखते ही शायद गुस्सा ओढ़ना पड रहा है, क्यो ? (शोभा बड़े गुस्से से उसे देखती है, मानो समझ नहीं पा रही हो कि क्या कहे। अजित उधर ध्यान दिए बिना उसी तरह कहता रहता है) वहां की प्रशंसा और वाहवाही मे गुस्सा कहाँ टिकता बेचारा—

शोभा : (चीखते हुए) अजित ! जब पूरी तरह होश मे आ जाओ तब बात करना, समझे !

(तेज़ी से बाहर चली जाती है।)

अजित : सच बात इतनी ही तल्ख होती है। सहना बड़ा मुश्किल होता है।

(सिगरेट पीता रहता है। धीरे-धीरे अंधकार होता है पर्दा गिरता है।)

अजित : घर में घुसी तब तो गुस्से का नाम निशान तक नहीं था चेहरे पर। मुझे देखते ही शायद गुस्सा ओढ़ना पड़ रहा है, क्यों? (शोभा बड़े गुस्से से उसे देखती है, मानो समझ नहीं पा रही हो कि क्या कहे। अजित उधर ध्यान दिए बिना उसी तरह कहता रहता है) वहाँ की प्रशंसा और वाहवाही में गुस्सा कहाँ टिकता बेचारा—

शोभा : (चीखते हुए) अजित! जब पूरी तरह होश में आ जाओ तब बात करना, समझे!

(तेज़ी से बाहर चली जाती है।)

अजित : सच बात इतनी ही तल्ख होती है। सहना बड़ा मुश्किल होता है।

(सिगरेट पीता रहता है। धीरे-धीरे अंधकार होता है। पर्दा गिरता है।)

द्वितीय-अंक

(पहला दृश्य)

(कुछ दिनों बाद अजित का वही ड्राइंग-रूम। समय संध्या के छह बजे। शोभा कॉलेज के क्लर्क के साथ बैठी हुई बातें कर रही है। वह कागज लिए हुए कुछ लिख रहा है। शोभा के सामने एक डायरी खुली हुई रखी है।)

शोभा : तो आपने सब लिख लिया, मिस्टर चौधरी ?

क्लर्क : आप कहें तो एक बार फिर से पढ़कर सुना दूं ?

शोभा : नहीं-नहीं, उसकी क्या जरूरत है ? तो आप ऑर्डर इण्डिया वुड क्राफ्ट वाले को ही दीजिए। उससे कहिए किसी भी दिन सवेरे दस और ग्यारह के बीच आकर मुझसे डिजाइन पास करवा ले।

(अजित का प्रवेश। दोनों को देखता है, जरा-से तेवर चढ़ जाते हैं। बिना कुछ बोले भीतर जाने लगता है।)

क्लर्क : छुट्टियों में पर्दों पर भी रंग करवाना होगा। आठ पंखे नए खरीदने होंगे और एक पानी का कूलर और—

शोभा : इस मीटिंग में इन चीजों की मंजूरी लेनी ही है। और भी कुछ हो तो आप बता दीजिए। मीटिंग के पहले

मुझे पूरी सूची एक साथ तैयार करके दीजिए।

क्लर्क : (उठते हुए) अच्छा, तो मैं इस समय तो चलूँ।
(नमस्कार करके जाता है। शोभा मेज़ पर फैले कागज आदि समेटती है। अजित का भीतर से प्रवेश।)

अजित : शोभा, कॉलिज के लोगों को तुम कॉलिज में ही बुलाया करो न! घर में बैठने को यही तो एक ठीक-ठीक कमरा है। सोने का कमरा तो तुम जानती हो, इतना गरम हो जाता है कि बैठना मुश्किल होता है। इस कमरे में आजकल जब देखो तुम अपना ऑफ़िस खोले बैठी रहती हो, आखिर—

शोभा : मैं खुद नहीं चाहती कि कॉलिज के लोगों को यहाँ बुलाऊँ। पर साल खत्म हो रहा है, काम इतना रहता है, और इतने आने-जाने वाले रहते हैं कि शांति से बात नहीं हो सकती। इसीलिए ज़रा-सी देर के लिए घर बुला लिया था।

अजित : अभी साल खत्म हो रहा है, फिर नतीजा निकलेगा तो लोग घर चक्कर लगाएँगे, फिर दाखिले के लिए, फिर फ़ीस माफ कराने के लिए—फिर कुछ और निकल आएगा। मुझे तो आजकल लगता है मैं घर में नहीं, मानो तुम्हारे ऑफ़िस में रहने लगा हूँ। (अजित बीच की मेज़ से अपनी डायरी उठाकर खोलता है) कितनी बार मैंने अप्पी से कहा है कि यह मेरी डायरी में ये सब कीड़े-मकोड़े न बनाया करे। कम से कम तुम उसे तो कुछ सिखा ही सकती हो। वह बेचारी तो आजकल भगवान भरोसे ही चल रही है। दुनिया-भर के बच्चों को पढ़ाओ और

शोभा : (बीच में ही बात काटकर) ताने मारने में आपको कोई विशेष आनन्द आता हो तो ठीक है, लेकिन इतना

द्वितीय-अंक

(पहला दृश्य)

कुछ दिनों बाद अजित का वही ड्राइंग-रूम। समय
के दस बजे। शोभा कॉलेज के क्लर्क के साथ बैठी
बातें कर रही है। वह कागज लिए हुए कुछ लिख
है। शोभा के सामने एक डायरी खुली हुई रखी है

शोभा : तो आपने सब लिख लिया, मिस्टर चौधरी ?

क्लर्क : आप कहें तो एक बार फिर से पढ़कर सुना दूँ ?

शोभा : नहीं-नहीं, उसकी क्या जरूरत है ? तो आप ऑ
इण्डिया बुक डिपो वाले को ही दीजिए। उनसे कहि
किसी भी दिन सवेरे दस और ग्यारह के बीच आ
मुझसे डिजाइन पास करवा ले।

(अजित का प्रवेश। दोनों को देखता है, जरा-से तेव
चढ़ जाते हैं। बिना कुछ बोले भीतर जाने लगता है।

क्लर्क : छुट्टियों में पंखों पर भी रंग करवाना होगा। आठ पं
नए खरीदने होंगे और एक पानी का कूलर और—

शोभा : इस मीटिंग में इन चीजों की मंजूरी लेनी ही है। और
भी कुछ हो तो आप बता दीजिए। मीटिंग के पहले

मुझे पूरी सूची एक साथ तैयार करके दीजिए।

क्लर्क : (उठते हुए) अच्छा, तो मैं इस समय तो चलूँ।
(नमस्कार करके जाता है। शोभा मेज़ पर फैले काग़ज़ आदि समेटती है। अजित का भीतर से प्रवेश।)

अजित : शोभा, कॉलिज के लोगों को तुम कॉलिज में ही बुलाया करो न! घर में बैठने को यही तो एक ठीक-ठीक कमरा है। सोने का कमरा तो तुम जानती हो, इतना गरम हो जाता है कि बैठना मुश्किल होता है। इस कमरे में आजकल जब देखो तुम अपना ऑफ़िस खोले बैठी रहती हो, आखिर—

शोभा : मैं खुद नहीं चाहती कि कॉलिज के लोगों को यहाँ बुलाऊँ। पर साल खत्म हो रहा है, काम इतना रहता है, और इतने आने-जाने वाले रहते हैं कि शांति से बात नहीं हो सकती। इसीलिए ज़रा-सी देर के लिए घर बुला लिया था।

अजित : अभी साल खत्म हो रहा है, फिर नतीजा निकलेगा तो लोग घर चक्कर लगाएँगे, फिर दाखिले के लिए, फिर फ़ीस माफ़ कराने के लिए—फिर कुछ और निकल आएगा। मुझे तो आजकल लगता है मैं घर में नहीं, मानो तुम्हारे ऑफ़िस में रहने लगा हूँ। (अजित बीच की मेज़ से अपनी डायरी उठाकर खोलता है) कितनी मैंने अप्पी से कहा है कि यह मेरी डायरी में ये सब -मरोड़े न बनाया करे। कम से कम तुम उसे तो [illegible] ही सकती हो। वह बेचारी तो आजकल अकेले ही पल रही है। दुनिया-भर के बच्चों [illegible] और—

जान लीजिए कि मेरी सहनशक्ति की भी एक सीमा है।

अजित : मैं और ताने मेरी इतनी जुर्रत कहाँ कि महिला विद्यालय की प्रिंसिपल साहब को ताने मारूँ ? मैंने तो सीधी-सी बात कही थी।

शोभा : जैसी सीधी बातें आप पिछले कुछ महीनों में कर रहे हैं, क्या मैं समझती नहीं ? मैं जानती हूँ कि मेरा प्रिंसिपल का काम लेना आपको भाया नहीं। पर एक बार तो आपने मुझे समझाने की कोशिश की होती कि क्यों आप इस काम के खिलाफ हैं ?

अजित : तुम्हें भी अपना कोई जरूरी काम करना होगा, मुझे भी कुछ करना है। बेहतर होगा हम इन सब फालतू बातों में अपना समय जाया न करें।

शोभा : यदि सचमुच ही ये सारी बातें फालतू होतीं तो न तो आप यों अपना संतुलन खो बैठते, न मैं ही इन्हें इतना तूल देती। आप मुझे बताते क्यों नहीं कि मैंने एक अच्छी नौकरी लेकर आखिर ऐसा क्या गुनाह कर दिया है ? मान लीजिए, आज आपको एकाएक ऐसी जगह मिल जाए, जिस तक पहुँचने के लिए वैसे आपको शायद दस साल लगें, तो आप नहीं ले लेंगे ? लेकर प्रसन्न नहीं होंगे ? अपने को उसके लायक सिद्ध करने के लिए जी-जान नहीं जुटा देंगे ?

अजित : (सीधी नजरों से शोभा को देखता है, फिर बड़े ही संयत और आवेशहीन स्वर में) जरूर जुटा दूँगा। पर शोभा, मेरी बात थोड़ी-सी भिन्न है। एक तो मैं अपने काम से यों ही बेहद असंतुष्ट हूँ, इसलिए मुझे कोई मौका मिलेगा तो जरूर ले लूँगा। फिर भी यदि उस काम के लिए मुझे अपने घर, अपनी बीवी और बच्चों

की कीमत चुकानी पड़े तो शायद दस बार सोचूँगा। क्योंकि मैं किसी अच्छी नौकरी की कामना केवल इसीलिए करता हूँ कि तुम लोगों को और अधिक आराम से रख सकूँ।

शोभा : तो तुम क्या समझते हो कि मैं तुम लोगों की कीमत पर यह काम कर रही हूँ ?

अजित : मुझे तो ऐसा ही लगता है।

शोभा : कारण ?

अजित : कारण भी मुझे ही बताना होगा ? तो सुनो। (स्वर में हल्का-सा आवेश आ जाता है) मैं चाहता हूँ मेरा घर घर हो—कोई ऑफ़िस या होटल नहीं। थका-मादा मैं ऑफ़िस से लौटकर आऊँ तो मेरी भी इच्छा होगी कि मेरी पत्नी—(बात बीच में ही छोड़ देता है) पर यहाँ तो जब भी आओ यही सुनने को मिलता है अभी वे मीटिंग में गई हैं, या कि इतने जरूरी काम में हैं कि उन्हें बात तक करने की फुर्सत नहीं है।

शोभा : (गुस्सा बढ़ता जाता है, फिर भी अपने को भरसक संयत करके) और कुछ ?

अजित : और ? और मैं चाहता हूँ कि मेरी बच्ची की परवरिश अच्छी तरह हो। देख रहा हूँ धीरे-धीरे उसका तो सारा ही भार जीजी पर चला गया। जीजी उसे अच्छी तरह देखती हैं, पर क्या सोचती होंगी वे भी मन में ? उसके प्रति क्या कोई भी फ़र्ज़ नहीं है तुम्हारा ? एक बच्ची है, पर तुम्हें उसके लिए भी फ़ुर्सत नहीं। बड़े-बड़े काम हैं तुम्हारे सामने करने को, तुम नहीं करोगी तो देश रसातल को नहीं चला जाएगा ?

शोभा : (बहुत ही शांत स्वर में) एक बात पूछूँ ? आपको घर का इतना खयाल है, जीजी का खयाल है, अपना

और अप्पी का खयाल है, पर कभी मेरा भी ख
किया है आपने ? कभी मेरी भावनाओं को भी स
की कोशिश की है ? मेरी अपनी भी कुछ आकांक्षा
अपने जीवन का कोई स्वप्न है। इस घर की च
दीवारी के परे भी मेरा अपना कोई अस्तित्व है, व्य
त्व है, और मैं चाहती हूँ कि—(गुस्से में होठ
लेती है)

अजित : सच बात ऐसी ही तल्ख होती है कि आदमी तिलमि
जाता है।

शोभा : फिर यह सच बात है भी नहीं। मैं खुद जानती हूँ
जब घर बसाया है, बच्चों को जन्म दिया है तो मे
पहला कर्त्तव्य उनके प्रति ही है। पर अपने इस कर्त्त
को भी भरसक पूरा ही करती हूँ। आजकल दो
नौकर हैं—सभी काम बड़े व्यवस्थित ढंग से चल र
हैं। अप्पी को मैं खुद दो घंटे रोज लेकर बैठती हूँ, उ
का पढ़ना, उसका खाना, उसका नाच सभी तो देखत
हूँ। और जहाँ तक आपका प्रश्न है —

अजित : (बीच में ही बात काटकर) मेरा ? मेरी बात तो तुम
छोड़ ही दो। ऑफिस से आया तो देखा यहाँ तुम्हारा
ऑफिस खुला हुआ है। भीतर जाकर देखा एक नौकर
अप्पी को लेकर पार्क गया है तो दूसरा सामान खरीदने।
जीजी नहा रही हैं। एक प्याले चाय तक की कोई व्य-
वस्था नहीं। बैठकर नौकर का इन्तजार करो— मानो
यह घर नहीं होटल है।

(हाथ की सिगरेट मसल कर राखदानी में डाल देता है
और कोट कंधे पर डालकर एकदम बाहर निकलने

अजित : बाहर ही कहीं पी लूंगा ! (चला जाता है)

(शोभा कुछ देर तक बड़े व्यथित भाव से देखती रहती है, फिर हथेली में सिर टिकाकर आँखें मूंद लेती है।)

(जयंत का प्रवेश)

जयंत : शोभा !

(शोभा चौंककर ऊपर देखती है। उसकी आँखों में आंसू हैं।)

जयंत : यह क्या, तुम रो रही हो ?

शोभा : नहीं, यों ही ज़रा !

जयंत : बात क्या है ? अजित क्या ऑफिस से आ गया ?

शोभा : आए थे, फिर चले गए !

जयंत : कहाँ ?—क्या किसी के काम से गया है ?

शोभा : नहीं, नाराज़ होकर !

जयंत : क्यों क्या बात हुई ?

शोभा : जयंत, तुम साहनी साहब से कह दो कि वे जुलाई से किसी और प्रिंसिपल का इन्तज़ाम कर लें। मेरे लिए यह काम करना संभव नहीं होगा।

जयंत : क्यों पागलों-जैसी बातें कर रही हो ? बताती क्यों नहीं क्या बात हुई है ?

शोभा : (कुछ ठहरकर) तुम तो जानते ही हो, ये शुरू से ही मेरे इस काम के खिलाफ थे। मैंने एक तरह से इनकी इच्छा के विरुद्ध ही इसे लिया था। सोचती थी शायद इन्हें मेरी योग्यता पर विश्वास नहीं है, इसीलिए ये विरोध कर रहे हैं। पर मैंने अच्छी तरह काम सम्हाल लिया, तब भी ये नाखुश ही हैं।

जयंत : साहनी साहब तो जुलाई से तुम्हारी नौकरी पक्की कर रहे हैं, और तुम हो कि काम छोड़ने की बात कर रही हो।

अजित : बाहर ही कहीं पी लूंगा ! (चला जाता है)
(शोभा कुछ देर तक बड़े व्यथित भाव से देखती रहती है, फिर हथेली में सिर टिकाकर आँखें मूंद लेती है।)
(जयंत का प्रवेश)

जयंत : शोभा !
(शोभा चौंककर ऊपर देखती है। उसकी आँखों में आंसू हैं।)

जयंत : यह क्या, तुम रो रही हो ?

शोभा : नहीं, यों ही जरा !

जयंत : बात क्या है ? अजित क्या ऑफिस से आ गया ?

शोभा : आए थे, फिर चले गए !

जयंत : कहाँ ?—क्या किसी के काम से गया है ?

शोभा : नहीं, नाराज़ होकर !

जयंत : क्यों क्या बात हुई ?

शोभा : जयंत, तुम साहनी साहब से कह दो कि वे जुलाई से किसी और प्रिंसिपल का इन्तज़ाम कर लें। मेरे लिए यह काम करना संभव नहीं होगा।

जयंत : क्यों पागलों-जैसी बातें कर रही हो ? बताती क्यों नहीं क्या बात हुई है ?

शोभा : (कुछ ठहरकर) तुम तो जानते ही हो, ये शुरू से ही मेरे इस काम के खिलाफ थे। मैंने एक तरह से इनकी इच्छा के विरुद्ध ही इसे लिया था। सोचती थी शायद इन्हें मेरी योग्यता पर विश्वास नहीं है, इसीलिए ये विरोध कर रहे हैं। पर मैंने अच्छी तरह काम सम्हाल लिया, तब भी ये नाखुश ही हैं।

जयंत : साहनी साहब तो जुलाई से तुम्हारी नौकरी पक्की कर रहे हैं, और तुम हो कि काम छोड़ने की बात कर रही हो।

और मम्मी का सवाल है, पर कभी मेरा भी ख्याल किया है आपने ? कभी मेरी भावनाओं को भी समझने की कोशिश की है ? मेरी अपनी भी कुछ इच्छाएँ हैं, अपने जीवन का कोई स्वप्न है। इस घर की चार-दीवारी के परे भी मेरा अपना कोई अस्तित्व है, व्यक्तित्व है, और मैं चाहती हूँ कि—(गुस्से में होंठ काट लेती है)

अजित : सच बात ऐसी ही तल्ख होती है कि आदमी तिलमिला जाता है।

शोभा : फिर यह सच बात है भी नहीं। मैं खुद जानती हूँ कि जब घर बसाया है, बच्चों को जन्म दिया है तो मेरा पहला कर्तव्य उनके प्रति ही है। पर अपने इस कर्तव्य को भी भरसक पूरा ही करती हूँ। आजकल दो-दो नौकर हैं—सभी काम बड़े व्यवस्थित ढंग से चल रहे हैं। पप्पी को मैं खुद दो घंटे रोज लेकर बैठती हूँ, उस का पढ़ना, उसका खाना, उसका नाच सभी तो देखती हूँ। और जहाँ तक आपका प्रश्न है—

अजित : (बीच में ही बात काटकर) मेरा ? मेरी बात तो तुम छोड़ ही दो। ऑफिस से आया तो देखा यहाँ तुम्हारा ऑफिस खुला हुआ है। भीतर जाकर देखा एक नौकर पप्पी को लेकर पार्क गया है तो दूसरा सामान खरीदने। जीजी नहा रही हैं। एक प्याले चाय तक की कोई व्यवस्था नहीं। बैठकर नौकर का इन्तजार करो—मानो यह घर नहीं होटल है।

(हाथ की सिगरेट मसल कर राखदानी में डाल देता है और कोट कंधे पर डालकर एकदम बाहर निकलने लगता है।)

शोभा : बाहर कहाँ चले ? मैं चाय ला रही हूँ।

अजित : बाहर ही कहीं पी लूंगा ! (चला जाता है)

(शोभा कुछ देर तक बड़े व्यथित भाव से देखती है, फिर हथेली में सिर टिकाकर आँखें मूंद

(जयंत का प्रवेश)

जयंत : शोभा !

(शोभा चौंककर ऊपर देखती है। उसकी आँखों में आँसू हैं।)

जयंत : यह क्या, तुम रो रही हो ?

शोभा : नहीं, यों ही जरा !

जयंत : बात क्या है ? अजित क्या ऑफिस से आ गया ?

शोभा : आए थे, फिर चले गए !

जयंत : कहाँ ?—क्या किसी के काम से गया है ?

शोभा : नहीं, नाराज होकर !

जयंत : क्यों क्या बात हुई ?

शोभा : जयंत, तुम साहनी साहब से कह दो कि वे जुलाई से किसी और प्रिंसिपल का इन्तजाम कर लें। मेरे लिए यह काम करना संभव नहीं होगा।

जयंत : क्यों पागलों-जैसी बातें कर रही हो ? बताती क्यों नहीं क्या बात हुई है ?

शोभा : (कुछ ठहरकर) तुम तो जानते ही हो, ये शुरू से ही मेरे इस काम के खिलाफ थे। मैंने एक तरह से इनकी इच्छा के विरुद्ध ही इसे लिया था। सोचती थी शायद इन्हें मेरी योग्यता पर विश्वास नहीं है, इसीलिए ये विरोध कर रहे हैं। पर मैंने अच्छी तरह काम सम्हाल लिया, तब भी ये नाखुश ही हैं।

जयंत : साहनी साहब तो जुलाई से तुम्हारी नौकरी पक्की कर रहे हैं, और तुम हो कि काम छोड़ने की बात कर रही हो।

भला ! ऐसा मुझमें है ही क्या ?

जयंत : तुम अपने आपको चाहे कुछ न समझो, पर बाहर तो तुम्हारी प्रतिष्ठा है ही। डिग्री कॉलिज की प्रिंसिपल होना—

शोभा : मेरी प्रतिष्ठा है तो क्या उनकी नहीं है ? आखिर मैं उनसे भिन्न तो नहीं ही हूँ।

जयंत : (सिगरेट सुलगाते हुए) शोभा, तुम अजित की पत्नी की तरह देखती हो न, तो कुछ बातों पर तुम्हारी नज़र न जाना ही स्वाभाविक है। *वरना ईर्ष्या अजित के खून* में मिली हुई है। सारी दोस्ती के बावजूद वह मुझ से हर बात में ईर्ष्या करता था, आज भी करता है। वह जो भी काम करता है, ईर्ष्या या होड़ की भावना से ही करता है।

(शोभा देखती रहती है, मानो बात को समझ नहीं रही हो।)

जयंत : तुम्हारी शादी के एक साल बाद मैंने शादी की। मीना बी० ए० पास थी तो तुरन्त उसने तुम्हारी पढ़ाई शुरू की और एम० ए० करवाया। पहले उसे अपनी नौकरी से ऐसी शिकायत नहीं थी, पर जब से मुझे अंग्रेज़ी कंपनी में काम मिला तब से—

शोभा : हो सकता है तुम्हें लेकर उनके मन में ईर्ष्या हो, पर मुझे लेकर ईर्ष्या करें यह बात तो—

जयंत : समझ में नहीं आती, क्यों ? आएगा शोभा, यह सब भी समझ में आएगा।

शोभा : मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आता मैं क्या करूँ ? जितनी कोशिश करती हूँ उन्हें खुश करने की, वे उतने ही नाराज़ होते जाते हैं। तुम्हीं बताओ आखिर किया क्या जाए ?

अलग हो रहा है।

शोभा : (सोचते हुए) कुछ कोई स्पष्ट बात नहीं कि क्या दूर हो रहा है ? घर की सारी व्यवस्था ठीक चल रही है। सबका काम ठीक समय पर हो जाता है। कभी कोई चीज़ भी अगर रह भी जाए तो उसी को लेकर तूफान मचाया जाता है ?

जीजी : घर की व्यवस्था और काम समय पर न होना छोटी बात है, शोभा कि इसका महत्व नहीं किन्तु यही। कभी नहीं किया करना। बात इससे ज़्यादा बड़ी और गहरी है।

शोभा : क्या है वह बड़ी और गहरी बात, मैं भी तो जानूँ आखिर ?

जीजी : (कुछ सोचकर) जानती हो शोभा, अविनाश तुम्हें बहुत प्यार करता है, बहुत ज़्यादा। (शोभा प्रश्नवाचक दृष्टि से देखती रहती है) पहले उसे लगता था तुम उसकी हो केवल उसकी। अब जैसे-जैसे तुम अपनी बाहरी जिम्मेदारियाँ बढ़ाती जा रही हो उसे लगता है तुम इस घर से, उससे दूर होती जा रही हो। वह तुम्हें फिर से पहले की तरह ही पाना चाहता है।

(शोभा बड़े ध्यान से सुनती रहती है)

शोभा : पर जीजी, ऐसा तो हमेशा होना ही रहता है। (फिर कुछ ठहरकर) शादी के तुरंत बाद लगता है जैसे हर समय साथ बैठे रहो, पाँच मिनट का अलगाव भी बुरा लगता है। फिर बच्चे आते हैं तो माँ के सारे ध्यान और प्यार का केन्द्र बन जाते हैं। पति-पत्नि की यह दूरी तो बढ़ती ही जाती है। पर यह बाहरी दूरी, बाहरी अलगाव तो उनके भीतरी संबंधों को और मजबूत बनाता है। नहीं होता ऐसा ?

जीजी : होता है, पर तभी तक जब तक पत्नी का केन्द्र घर और बच्चे ही रहें।

शोभा : तब आप ही बताइए, जीजी, मैं क्या करूं ? काम छोड़ दूं ? अपने को घर और बच्चों में ही सीमित कर लूं ?

जीजी : इस तरह आवेश में आकर कुछ भी करना गलत होगा। और देखो, बुरा न मानो तो एक बात और कहूं।

(शोभा प्रश्नवाचक दृष्टि से उन्हें देखती है।)

जीजी : जयंत को अपने इस मामले से दूर ही रखो तो ज्यादा अच्छा होगा।

शोभा : क्यों ? क्या बात है ?

जीजी : यह तुम्हारा एकदम व्यक्तिगत मामला है, दूसरों के बीच में आने से कभी-कभी बात सँभलने के बजाय और बिगड़ जाती है, इसलिए।

शोभा : पर जयंत तो शुरू से ही इस घर में घर के सदस्य की तरह ही सम्पर्क करता रहा है।

जीजी : कभी-कभी घर के सब सदस्यों को भी सारी बातें नहीं बताई जातीं—व्यर्थ ही गलतफ़हमी हो जाया करती है। (प्रसंग बदलकर) अच्छा चलो, उठकर मुंह धोओ। अप्पी आने वाली होगी। कम से कम उस पर तो इन सारी बातों का प्रभाव न पड़े। (शोभा ज्यों की त्यों बैठी रहती है। जीजी उसकी पीठ थपथपाती है) चलो चलो, उठो झट।

(दोनों भीतर चली जाती हैं। धीरे-धीरे पूर्ण अंधकार हो जाता है।)

जीजी : कहीं तुमने गुस्से ही गुस्से में जल्दबाजी तो नहीं कर दी ?

अजित : कोई जल्दबाजी नहीं । यहाँ इतने दिन काट दिए सो ही बहुत हैं । जब ये लोग कल के छोकरों को खोपड़ी पर ला-लाकर बिठा देंगे, जिनको न कोई तजुर्बा है न अक्ल तो कौन बर्दाश्त करेगा ?

जीजी : सो तो ठीक है, पर पहले कहीं दूसरी जगह बात पक्की कर लेते । मेरा मतलब है यों एकाएक—

(शोभा का प्रवेश)

शोभा : अरे, आप आ गए ?

जीजी : अजित का इस्तीफा मंजूर हो गया आज !

शोभा : अच्छा, हो गया ?

अजित : मैंने कोई बंदरघुड़की थोड़े ही दी थी । मुझे तो यहाँ अब काम करना ही नहीं है ।

शोभा : बर्मा शैल की अर्जी भेज दी ?

(नौकर शिकंजवी लेकर आता है)

अजित : भेज दी, आज मिस्टर शाह से मिलने भी गया था । उन का यही कहना है कि जगह तो खाली होगी, बस जरा—

शोभा : यह जगह मिल जाए तो बड़ा अच्छा हो ! इस नौकरी का तो मुझे कतई अफ़सोस नहीं ।

जीजी : (उठते हुए) शोभा, तुम्हारे लिए शिकंजवी भिजवाऊँ या चाय लोगी ?

शोभा : आप बैठिए, मैं खुद कह आती हूँ । (भीतर जाती है)

अजित : देख रहा हूँ जीजी, आप चिंतित हो उठी हैं ।

जीजी : नहीं रे, मैं क्यों चिंतित होने लगी ? —तुम परेशान मत

टेलीफ़ोन की घंटी बजती है। अजित उठाता है।

अजित : हलो-ऽ । जी हाँ, मैं बोल रहा हूँ अजित।— जी— जी —ऐं ? ओह, तो यह बात है ?— जी— जी— बात तो बहुत ही अच्छी तरह से की थी। यानी मुझे तो पूरी उम्मीद हो चली थी, शाह साहब। अच्छा-ऽ— मैं आ जाऊँ ? मैं अभी हाज़िर हुआ—बस अभी आया। (फ़ोन रखता है)

शोभा : क्या कहा शाह साहब ने ?

अजित . (कुछ घबराया-सा है) सुना है मिस्टर विलियम्स की नज़र में कोई और है।

शोभा . अच्छा ?

अजित : बुलाया है। देखो, क्या होता है ? मुझसे तो इस तरह बात कर रहा था जैसे बस तुरन्त ही नियुक्ति पत्र भेज देगा। इन लोगों का कुछ पता भी तो नहीं लगता।

शोभा : मिल आइए, कुछ हो जाता है तब तो ठीक ही है, वरना देखी जाएगी—। (हल्के से) आप कहें तो जयन्त से बात करूँ शायद।

बात। जयन्त, जयंत। तुम्हारी होगा। बाहर क्या ऐसे ही कोई आदमी बड़ा क्या सिफ़ारिश करेगा

बात करूँ ?

शोभा : क्या बताऊँ जयंत—

जयंत : क्या बात है ?

शोभा : तुम एक काम करो। जैसे भी हो, जिसकी मदद से भी हो, कोशिश करो जयंत, *यह काम इन्हें मिल ही जाना* चाहिए। —सुना है वह किसी और को चाहता है। (एक मिनट के लिए रुक जाती है) पर जयंत, एक बात याद रखना। अजित को इस बात का जरा भी आभास नहीं होना चाहिए कि मैंने तुमसे कुछ कहा है या कि तुमने किसी तरह की कोशिश की है।

जयंत : (आश्चर्य से) क्यों ?

शोभा : बस, यह मत पूछो। बिना बताए यदि कुछ कर सको तो करो। मैं तुम्हारा अहसान कभी नहीं भूलूँगी, जयंत। (स्वर भर्रा जाता है)

जयंत : (कुछ सोचते हुए) ओह, तो यह बात है ? अच्छा शोभा, मुझसे जो होगा जैसे भी होगा, मैं करूँगा, जरूर करूँगा। अजित का कोई काम करना मेरे लिए अपना काम करने के बराबर है। पर अजित के मन में इतना परायापन आ गया है, वह मुझसे इतना दुराव रखता है, यह आज ही मालूम हुआ। खिचा-खिचा कई दिनों से रहता है, पर बात

[illegible] त आजकल ठिकाने नहीं है, [illegible] तुम बुरा मत मानो। मेरे [illegible] ही हो, वे आजकल कैसा व्यवहार [illegible] तब से तो हालत

और भी खराब हो गई है।

जयंत : अयंत अजित की बात का बुरा मानना होगा शोभा, शायद आज से दो साल पहले ही इस घर में आना छ देता। उसके हर व्यवहार को मैंने दोस्ताना रूप लिया क्योंकि मैं कभी भूल नहीं पाता कि यह वे वही दोस्त है जो होस्टल में मेरी बीमारी के दिनों महीनों रात-रात भर जागा है। मीना के अलगाव दुःख को मैंने इसकी गोद में ही रो-रोकर हल्का कि है। उस समय उसने इस घर को मेरे लिए ऐसा ब दिया कि मैं अपने घर की कमी को महसूस न कर सकूँ सच कहता हूँ, यहाँ आते समय मुझे कभी लगता ही नहीं कि मैं किसी दूसरे के घर जा रहा हूँ। इस घर बड़े-बड़े निर्णय मैं इस तरह लेता हूँ, मानो इस घर प मेरा पूरा-पूरा अधिकार है —

शोभा : सो तो है ही, जयंत। तुम्हारे कहने से ही तो मैंने अजित के मना करने पर भी यह काम लिया था। तुम्हारे इस अधिकार को कौन नकारता है?

जयंत : (ज़ोर से) अजित नकारता है। उसने ज़रूर तुमसे मना किया होगा यह सब मुझसे कहने के लिए। मेरा अहसान नहीं लेना चाहता। (फिर एकाएक ही व्यथित-से स्वर सोचता कि मैं क्या अहसान ... किया है ऐसा? हमारे बीच में थी। तुम भी आज अहसान हो।—क्या हो गया है

शोभा : (बहुत ही स्निग्ध-से

गाड़ी में ले जाऊँगा, गाड़ी में छोड़ जाऊँगा।

शोभा : तो यहीं बैठकर क्या करोगे ? मैं तुम्हारे साथ तो नहीं हूँ तो मैं भीतर चली जाती हूँ।

जयंत : तुम इसको इतना ओवरडू क्यों करना चाहती हो? तुम्हारा पति है तो मेरा भी दोस्त है। चलो, अजित, उठो।

(अजित एक क्षण कुछ तय ही नहीं कर पाता कि क्या करे। शोभा आँखों से जयंत को समझाना चाहती है। लेकिन अजित उठकर चलने को तैयार हो जाता है।)

जयंत : घंटे-डेढ़ घंटे में छोड़ जाऊँगा। फ़िक्र मत करना।

शोभा : फ़िक्र की क्या बात है ? मैं तो –

(दोनों चले जाते हैं। शोभा भी दरवाज़ा बंद करके भीतर चली जाती है। धीरे-धीरे अन्धकार होता है।)

(तीसरा दृश्य)

(अगले दिन सवेरे नौ बजे। कमरा ख़ाली पड़ा है। भीतर से अजित आता है। बाहर जाने के लिए तैयार है। मेज़ से सिगरेट और लाइटर उठाता है।)

अजित : बन्नू, दरवाज़ा बंद कर लेना।

(अजित का प्रस्थान। शोभा प्रवेश करती है। उसकी आँखें हल्की-सी सूजी हुई हैं। दरवाज़ा बंद करती है एक क्षण खड़ी रहकर कुछ सोचती है। फिर टेलीफ़ोन करती है।)

शोभा : हलो-ऽ—। हाँ, जयंत, मैं बोल रही हूँ। कल की सारी बातचीत के लिए माफ़ी माँगना चाहती हूँ। ऍं-ऽ—? मुझे

बीच में बोलने का कोई अधिकार नहीं है ? – है, जयंत है ! मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि ये इस स्तर पर उतर आएंगे। सारी रात क्या गुज़री है मुझ पर कि बता नहीं सकती। किस बात की है यह कुंठा ? क्या नहीं है अजित के पास ? — क्या ? मैं नहीं समझ सकूँगी ? हाँ सच, अब तो यही लगने लगा है कि मैं अजित को बिलकुल नहीं समझती। इतने साल साथ रहने के बाद भी नहीं। क्या सोच रहे होंगे तुम भी ! – कुछ नहीं सोच रहे ? सच कह रही हूं, जयंत, अगर ये बकार नहीं होते न, तो मैं भी बता देती इन्हें कि ऐसी ऊलजलूल बातें सोचने का क्या फल होता है ! – हाँ—हाँ बात की थी विलियम्स ने ? यह सब सुनने के बाद भी ? मैं होती तो कभी नहीं करती। —हूँ –अड़वानी से कहूंगा अंग? वह कह देगा तो उम्मीद है ? – तुम्हारी जो मर्ज़ी हो करो। मेरा तो गुस्से और अपमान से रोम-रोम जल रहा है। —यह बात तुम बिलकुल छिपा गए ? मैं भी सोच रही थी कि सारे पुराण खुले, यह बात नहीं आई। – सच कह रहे हो ? मेरी बात तुमने मान ली ! क्या कहूं जयंत, तुम सचमुच महान हो। कल तो बराबर मन में यही डर बना रहा। (एकाएक दरवाज़े की घंटी बजती है) कोई आया है, अभी रखती हूँ। तुम इधर नहीं आ रहे ?—क्या कहा, अब इस घर में कभी नहीं आओगे ? मेरे पास भी नहीं ? (फिर घंटी बजती है) अच्छा, फिर बात करूँगी। (फोन रख देती है)

(शोभा दरवाज़ा खोलती है मीना का प्रवेश।)

अरे ! एक सप्ताह बाद आज तुम्हारी शक्ल दिखाई

तब से बराबर गाँवों में घूम रही हूँ, पर एक अजीब-सी बेचैनी, अजीब-सा उखड़ापन बराबर ही महसूस कर रही हूँ।

शोभा : सच-सच बताना, मीना। इस सारी बेचैनी में क्या कहीं भी जयंत नहीं है?

मीना : एकदम नहीं है, यह भी नहीं कह सकती। पर एक मात्र जयंत ही है यह भी ग़लत है। जयंत शायद नहीं ही है। पर हाँ जयंत को देखकर मन की रिक्तता और चुभने लगी है, खालीपन और अधिक गहरा गया है!

शोभा : (बहुत स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ फेरकर) मीना।

मीना : जानती हो, शोभा, परसों दोपहर को बालीगंज वाले घर के सामने से गुजरी। पिछली बार भी इतने दिनों कलकत्ता रह गई, पर उधर से कभी नहीं गुजरी। बड़ी विचित्र-सी अनुभूति हुई। बरामदे में मैंने बड़े शौक से मनी प्लाट के जो गमले लटकाए थे, वे वहाँ नहीं थे। सारा बरामदा बड़ा सूना-सूना लग रहा था। मन हुआ एक बार भीतर जाकर देखूँ, कहाँ क्या-क्या बदल गया है? मन और परिश्रम से जमाए उस घर की क्या हालत है? रग्घू कैसा है? बड़ी मुश्किल से अपनी इस इच्छा को रोक पाई। बाद में बड़ी देर तक सोचती भी रही कि जिस घर को और जिंदगी को अपनी इच्छा से छोड़ आई उसके प्रति यह कैसा मोह?

शोभा : कितनी ही बार सोचती हूँ, मीना, कि घर छोड़कर कैसा लगता होगा? घर छोड़कर ही कोई औरत क्या उस घर को भूल सकती है जिसे वह अपने हाथों से बनाती है सँवारती है?

हुई हूँ इनसे कि बता नही सकती। पहले दिन देखा था तो सोचा था कि यों ही तुम्हारी कोई विधवा ननद होगी। बस लगा पढी-लिखी चाहे अधिक न हो, पर किसी बात पर गहराई तक सोचने का ऐसा माद्दा शायद ही किसी औरत मे हो।

शोभा : मेरी तो खुद इन पर बड़ी श्रद्धा है। अपनी उम्र से कही अधिक आधुनिक और विचारो मे बेहद सतुलित। पर है बड़ी बदकिस्मत। सोलह साल की उम्र मे ही विधवा हो गई।

मीना : कोई बच्चा भी नही है इनके ?

शोभा . नही, शादी के छःमहीने बाद ही तो विधवा हो गई थी। उस जमाने मे विधवा विवाह होते नहीं थे। पिताजी ने ससुराल से कानपुर बुला लिया, और पढाई जारी करवा दी। पर तब विधवा लडकी स्कूल जाए यही बडी बद-नामी की बात थी। सो पिताजी ने तग आकर घर बिठा लिया। मैट्रिक की सारी तैयारी की थी, बस इम्तिहान नहीं दे सकी थीं। इसी ग़म मे माताजी की मृत्यु हो गई, सो बस कानपुरवाला घर सम्हालना इनका काम हो गया। मेरे लिए तो सास कहो, ननद कहो, या माँ कहो, यही है।

मीना : पर कोई कुठा नहीं, कोई गाँठ नही। वरना ऐसे स्थिति मे कोई सहज नहीं रह पाता है।

शोभा : मुझे तो खुद आश्चर्य होता है। सचमुच कमाल की औरत है। जब मैंने कॉलेज का काम लिया था तो अप्पी छोटी थी। अजित ने इन्हें आने के लिए लिखा तो तुरन्त आ गईं। हम सबको इतने प्यार से रखती है कि बस।

राह पर ले जाना चाह रहे हैं, जिस पर चलकर तुम अजित से दूर होती जाओ।

शोभा : (खीझकर) कैसी दिलचस्पी, कैसी राह ? मैं कोई नासमझ बच्ची हूँ जो कोई मुझे मनचाही राह पर ले चलेगा ? बस यह प्रिंसिपल की जगह दिलवाने में उन्होंने बहुत कोशिश की, उन्हीं की वजह से काम मुझे मिला भी है—अब इसका जो चाहे अर्थ लगा लो।

मीना : नाराज़ होने की बात नहीं है—शोभा ! सारी प्रतिभा और बुद्धिमानी के बावजूद तुम शायद कहीं बहुत ज्यादा सीधी और सरल भी हो। तुम्हारी बात मैं नहीं जानती, पर जयंत अनजाने में ही यह सब कर सकता है। (कुछ ठहर कर) यों जान-बूझकर वह स्वयं नहीं चाहता, पर अनजाने करता वही सब है। शुरू से ही तुम लोगों का सुखी परिवार उसके लिये हल्के-से कष्ट का कारण रहा है।

शोभा : दो दिन पहले भी यदि तुम यह बात कहती तो मैं मान लेती, पर आज नहीं मान सकती। तुम आई तब उन्हीं का फ़ोन आया था। कल की सारी बात हो जाने के बावजूद वह अजित की नौकरी के लिए कोशिश कर रहे हैं। और मैं जानती हूँ कि जब वह किसी चीज़ को हाथ में लेते हैं तो ज़मीन-आसमान एक कर देते हैं। उनका कल का व्यवहार और कल की बातें सुनकर तो मेरा मन श्रद्धा से भर उठा है, और ये हैं कि बैठे-बैठे—

मीना : मैंने कहा न, मुझे सारी बात मालूम ही नहीं। मैंने तो यों ही अपनी धारणा बता दी थी। हो सकता है, मैं एकदम ग़लत होऊँ।

शोभा : जयंत तो जयंत, कम से कम मुझ पर तो विश्वास रखा

राह पर ले जाना चाह रहे हैं, जिस पर चलकर तुम अजित से दूर होती जाओ।

शोभा : (खीझकर) कैसी दिलचस्पी, कैसी राह? मैं कोई नासमझ बच्ची हूँ जो कोई मुझे मनचाही राह पर ले चलेगा? बस यह प्रिंसिपल की जगह दिलवाने में उन्होंने बहुत कोशिश की, उन्हीं की वजह से काम मुझे मिला भी है—अब इसका जो चाहे अर्थ लगा लो।

मीना : नाराज होने की बात नहीं है—शोभा! सारी प्रतिभा और बुद्धिमानी के बावजूद तुम शायद कहीं बहुत ज्यादा सीधी और सरल भी हो। तुम्हारी बात मैं नहीं जानती, पर जयंत अनजाने में ही यह सब कर सकता है। (कुछ ठहर कर) यों जान-बूझकर वह स्वयं नहीं चाहता, पर अनजाने करता वही सब है। शुरू से ही तुम लोगों का सुखी परिवार उसके लिये हल्के-से कष्ट का कारण रहा है।

शोभा : दो दिन पहले भी यदि तुम यह बात कहती तो मैं मान लेती, पर आज नहीं मान सकती। तुम आईं तब उन्हीं का फ़ोन आया था। कल की सारी बात हो जाने के बावजूद वह अजित की नौकरी के लिए कोशिश कर रहे हैं। और मैं जानती हूँ कि जब वह किसी चीज को हाथ में लेते हैं तो जमीन-आसमान एक कर देते हैं। उनका कल का व्यवहार और कल की बातें सुनकर तो मेरा मन श्रद्धा से भर उठा है, और ये हैं कि बैठे-बैठे—

मीना : मैंने कहा न, मुझे सारी बात मालूम ही नहीं। मैंने तो यों ही अपनी धारणा बता दी थी। हो सकता है, मैं एकदम ग़लत होऊँ।

शोभा : जयंत तो जयंत, कम से कम मुझ पर तो विश्वास रखा

छोड़—

शोभा : (सोच के क्रम काटकर) मैं आपके लिए क्या कर सकती हूँ?

सेठ : ही—ही—ही—। भौत नाम सुना है आपका। कमला तो भौत ही तारीफ़ करती है आपकी।

शोभा : बेहतर होगा आप यह बताएँ कि मैं आपके लिए क्या कर सकती हूँ।

सेठ : (चारों ओर देखकर) अहा-ऽ!—क्या घर रखती हैं आप! लोग-बाग कहते हैं कि पढ़ी-लिखी लड़कियाँ घर-बार नहीं देखतीं। अब कोई कहे? जैसा नाम सुना था, वैसा ही पाया। कमला तो भौत ही तारीफ़ करती है आपकी!

शोभा : क्या मैं जान सकती हूँ कि—आपको क्या काम है?

सेठ : वह—वह—वह इस बार आपने कमला को फ़ेल कर दिया, उसी के बारे में—

शोभा : मैंने फ़ेल कर दिया? उसने काम अच्छा न किया होगा तो फ़ेल हो गई होगी।

सेठ : सो कुछ नहीं, वह एक ही बात है। पर जो हो गया सो हो गया। अब आप उसे अगले दर्जे में चढ़ा दीजिए।

शोभा : यह कैसे हो सकता है, सेठ साहब? जो फ़ेल है उसे चढ़ाया कैसे जा सकता है?

(अजित का प्रवेश। सेठ जी को देखकर हल्के-से भृकुटि तन जाती है, बिना कुछ बोले भीतर चला जाता है।)

सेठ : मेरी तो यही समझ में नहीं आता कि फ़ेल कैसे हो गई। ... तो प्रोफ़ेसर रखे हैं। एक-एक को दो सौ रुपया ... एक और रख दूँगा, इस बार तो आप चढ़ा

दीजिए ।

शोभा : देखिए सेठ जी, विद्या कोई चाय या चावल तो नहीं जिसे आप पैसे से खरीद लेंगे । आप नंबर देखना चाहेंगे उसके ?

सेठ : अरे, नहीं- नहीं, नंबर-फंबर की बात नहीं । बस, मुझे तो इस साल उसे चढ़वाना है । (जरा आगे झुककर धीरे से) देखिए, इस बार तो आप चढ़ा दीजिए, बाकी जो बात हो हमसे कहिए, क्या सेवा की जाए आपकी ?

शोभा : (डाँटकर) क्या समझ रखा है आपने कॉलेज को ?

सेठ : अरे, आप नाराज् क्यों होती हैं ?

शोभा : आप यहाँ से तशरीफ़ ले जा सकते है ! मैं आप के लिए कुछ भी नहीं कर सकूँगी !

सेठ : (तैश में आकर) तो आप नहीं चढ़ाएँगी ? ठीक है, *आप यह मत सोचिए कि कलकत्ते में आपका कॉलेज है।* मैं जहाँ चाहूँ इसे भर्ती करा सकता हूँ । न दूसरे साल में करवा दिया तो मेरा नाम सेठ संपतलाल नहीं । हूँ —! (प्रस्थान)

(शोभा दरवाजा बन्द करके भीतर चली जाती है । धीरे-धीरे रंगमंच पर अंधकार होता जाता है । फिर जब उजाला होता है तो रात्रि के दस बजे हैं । भीतर से अजित आकर बत्ती जलाता है । अलमारी में से एक किताब निकालकर पढ़ता है, फिर रख देता है । बीच मेज से अखबार उठाकर देखता है उसे भी रख देता है अन्त में दोनों हथेलियों में सिर-मुँह ढँककर बैठ जाता है । जीजो का भीतर प्रवेश । एक क्षण उसे इस रूप में

दौर —

शोभा : (चौंक में बात काटकर) मैं आपके लिए क्या कर सकती हूँ ?

सेठ : ही—ही—ही—। और नाम सुना है आपका। कमला तो और ही तारीफ करती है आपकी।

शोभा : बेहतर होगा आप यह बताएँ कि मैं आपके लिए क्या कर सकती हूँ।

सेठ : (चारों ओर देखकर) अहा-हा!—क्या घर रखती हैं आप! लोग-बाग कहते हैं कि नदी-किनारे लड़कियाँ बार-बार नहीं देखतीं। अब कोई कहे? जैसा नाम सुना था, वैसा ही पाया। कमला तो और ही तारीफ करती है आपकी!

शोभा : क्या मैं जान सकती हूँ कि—आपको क्या काम है?

सेठ : वह—वह—वह इस बार आपने कमला को फ़ेल कर दिया, उसी के बारे में—

शोभा : मैंने फ़ेल कर दिया? उसने काम अच्छा न किया होगा तो फ़ेल हो गई होगी।

सेठ : सो कुछ नहीं, वह एक ही बात है। पर जो हो गया सो हो गया। अब आप उसे अपने दर्जे में चढ़ा दीजिए।

शोभा : यह कैसे हो सकता है, सेठ साहब?

रही थी कि वह छुट्टियों में अप्पी को लेकर कुछ दिनों के लिए दार्जिलिंग चली जाए क्या ? क्या सोचते हो तुम ?

अजित : मैं किसी के बारे में कुछ नहीं सोचता। जो जिसकी इच्छा हो करे।

जीजी : मैं भी सोचती हूँ कि वह चली जाए तो अच्छा रहेगा। पर शाम को उसने बताया कि उसने जाने का इरादा ही छोड़ दिया। तुम दोनो के दिमाग़ों का मुझे तो कुछ पता ही नहीं चलता।

अजित : (व्यंग्य से) सलाहकार साहब ने मना कर दिया होगा तो इरादा छोड़ दिया !

जीजी . अजित, देख रही हूँ कि एक व्यर्थ के सन्देह को पाल-पोसकर तुम अपना घर बिगाड़ने पर तुले हुए हो ! (अजित चुप रहता है) चलो, उठकर खाना खाओ ! बैठे-बैठे व्यर्थ की बातें सोचते रहते हो। अपनी पत्नी के लिए यह सब सोचते हुए तुम्हें —(रुक जाती है)

अजित : कह लीजिए, कह लीजिए !

जीजी : मुझे कुछ नहीं कहना।—चलो, खाना खाने !

अजित : मुझे भूख भी नहीं है, जीजी, और सिर भी दर्द कर रहा है। खाने की ज़रा भी इच्छा नहीं है।

जीजी : (ग़ौर से देखते हुए) अजित, यों भूख काटने से दुःख नहीं कटते, भैया। मन तो ख़राब है ही, अब क्या शरीर भी ख़राब करके मानोगे ?

अजित : एक समय न खाने से कुछ नहीं होता, जीजी। आप चलकर खाइए। मैं सच कह रहा हूँ, मेरी इच्छा नहीं है। (जीजी एक क्षण खड़ी रहती हैं, फिर धीरे-धीरे जाने

देखती हैं फिर उसके सिर पर हाथ फेरती हैं।)

जीजी : (बड़े ही स्निग्ध-से स्वर में) अजित! (अजित मुँह उठाकर ऊपर देखता है) क्या बात है, भैया? इस समय यहाँ कैसे बैठे हो?

अजित : कुछ नहीं, यों ही। कुछ पढ़ना चाह रहा था, पर सिर में दर्द हो रहा है, सो पढ़ा नहीं गया।

जीजी : सिर दबा दूँ?

अजित : नहीं-ऽ-! अपने-आप ठीक हो जाएगा। आइए, बैठिए!

(जीजी अजित के पास ही बैठ जाती हैं।)

जीजी : बात हुई शाह साहब से, कुछ पता चला?

अजित : हाँ-ऽ-! शायद जुलाई में खाली होगी। पर कोशिशें अभी से हो रही हैं उसके लिए।

जीजी : हो जाए, हो जाए। नहीं तो कलकत्ते में नौकरियों की कौन ऐसी कमी है? तुम इस तरह परेशान मत होओ!

अजित : नौकरी का तो कुछ न कुछ होगा ही, जीजी। नहीं भी हुआ तो दो-चार महीने तो भूखे मरने की नौबत आने से रही।

जीजी : तब क्यों तुम इतना परेशान रहते हो? भीतर ही भीतर घुलते रहते हो।

अजित : क्या करूँ, जीजी, बाहर-भीतर सभी तरफ की तो परेशानी है। मुझे लगता है जैसे सब ओर से मुझे निकाल दिया गया है। तुम्हीं बताइए, जीजी, मैं क्या करूँ? क्या करना चाहिए मुझे?

जीजी : (पीठ पर हाथ फेरते हुए।) कुछ नहीं करना चाहिए।

(पहला दृश्य)

(कुछ महीने बाद। सबेरे का समय अजित का ड्राइंग रूम नए ढंग से सजा हुआ है, कुर्सियों की संख्या अधिक है। नए गिलाफ, पर्दे आदि लगे हुए हैं। भीतर से जीजी का प्रवेश। नंबर मिलाकर फ़ोन करती हैं।)

जीजी : हलो-ऽ।—कौन, रघू ? साहब हैं ? ज़रा उन्हें बुला देना।—हो-ऽ। मैं जीजी बोल रही हूँ, जयंत। बोलो, तुमने क्या तय किया!—क्या कहा, मुश्किल है आना।—ठीक है, तो मैं फिर दावत ही रोके देती हूँ।—नाराज़ मैं क्या हो रही हूँ, नाराज़ तो तुम हो। हाँ—हाँ—देखो, जयंत, यह घर अजित का ही नहीं, शोभा का और मेरा भी है। *शोभा कल शाम को तुम्हें बुलाने गई।* कहो तो आज मैं आ जाऊँ। शोभा की नौकरी पक्की होने की दावत तुम्हारे बिना हो नहीं सकती।—तुम आओ तो सही, न हो जाए अजित शर्म से पानी-पानी तो कहना। तुम्हें मेरे सिर की क़सम है, जयंत, आज

लगती हैं।)

अजित : जाएँ तो बत्ती बन्द करती जाइए। रोशनी से बड़ी गर्मी लगती है!

(रंगमंच पर एकदम अंधकार हो जाता है। कुछ पल बाद घड़ी में बारह के घंटे बजते हैं। भीतर से शोभा का प्रवेश। बत्ती जलाती है तो देखती है कि अजित सोफे पर सो गया है। बीच की मेज़ पर अप्पी की तस्वीर पड़ी है। उसे उठाती है, देखकर फिर किताबों की अलमारी पर रख देती है। एक क्षण अजित को देखती रहती है, फिर बत्ती बुझाकर भीतर चली जाती है।)

(पहला दृश्य)

(कुछ महीने बाद। सबेरे का समय अजित का ड्राइंग रूम नए ढंग से सजा हुआ है, कुर्सियों की संख्या अधिक है। नए गिलाफ, पर्दे आदि लगे हुए हैं। भीतर से जीजी का प्रवेश। नंबर मिलाकर फ़ोन करती हैं।)

जीजी : हलो-ऽ।—कौन, रग्घू ? साहब हैं ? जरा उन्हें बुला देना।—हाँ-ऽ। मैं जीजी बोल रही हूँ, जयंत। बोलो, तुमने क्या तय किया! —क्या कहा, मुश्किल है आना।—ठीक है, तो मैं फिर दावत ही रोके देती हूँ।—नाराज मैं क्या हो रही हूँ, नाराज तो तुम हो। हाँ—हाँ—देखो, जयंत, यह घर अजित का ही नहीं, शोभा का और मेरा भी है। शोभा कल शाम को तुम्हें बुलाने गई। कहो तो आज मैं आ जाऊँ। शोभा की नौकरी पक्की होने की दावत तुम्हारे बिना हो नहीं सकती।—तुम आओ तो सही, न हो जाए अजित शर्म से पानी-पानी तो कहना। तुम्हें मेरे सिर की क़सम है, जयंत, आज

लगती हैं।)

अजित : जाएँ तो बत्ती बन्द करती जाइए। रोशनी से बड़ी गर्मी लगती है!

(रंगमंच पर एकदम अंधकार हो जाता है। कुछ पल बाद घड़ी में बारह के घंटे बजते हैं। भीतर से शोभा का प्रवेश। बत्ती जलाती है तो देखती है कि अजित सोफे पर सो गया है। बीच की मेज पर अप्पी की तस्वीर पड़ी है। उसे उठाती है, देखकर फिर किताबों की अलमारी पर रख देती है। एक क्षण अजित को देखती रहती है, फिर बत्ती बुझाकर भीतर चली जाती है।)

ठीक हो जाएगा। कल जब मैंने दावत की बात कही तो खुशी-खुशी राजी हो गया या नहीं !

शोभा : और शाम को ही फिर दिमाग खराब हो गया।

जीजी : सारी चीज पहले-जैसी स्थिति में आए, इसमें समय तो लगेगा ही—पर अब तुम भी अपना रवैया बदलो। तीन महीने से तुमने तो अजित को काट ही रखा है एक तरह से।

शोभा : मैंने ? या उन्होंने मुझे काट रखा है ?

जीजी : समझ में नहीं आता किसे दोष दूँ ? लगता है जैसे कोई बुरे ग्रह तुम लोगों पर आए हुए थे। लेकिन अब वे टल गए। देख लेना अजित की यह नौकरी तुम्हारे लिए नई जिंदगी लाएगी ?

शोभा : नई जिंदगी ? मैं तो अब रात-दिन नई जिंदगी की ही कामना करती हूँ—इस जिंदगी—

(नौकर का प्रवेश)

नौकर : बीबीजी, चलकर दाल देख लीजिए।

जीजी : चलो, मैं चलती हूँ। (शोभा से) मिठाई और चौका-बोला का काम तुम करती जाओ। सोच रही थी चार-छः जनों को और बुला ही लेती। क्या फरक पड़ता है, जहाँ आठ वहाँ बारह।

शोभा : छोड़िए, जीजी ! सच पूछें तो मेरा तो आठ का भी मन नहीं था। ऐसी स्थिति में किसे अच्छा लगता है दावत करना ? अब तो आप यही देख लीजिए कि आने वालों में से किसी का अपमान न हो !

जीजी : तुम इसकी चिंता मत करो, मैं अभी अजित को समझा देती हूँ।

तुम नहीं आए तो समझ लूँगी कि जीजी और शोभा तुम्हारे लिए मर गईं।—हाँ—हाँ, तुम थोड़ी-सी देर के लिए ही आना, पर आना जरूर। तुम्हें मेरे सिर की कसम है—जीजी की बात नहीं टालते। तो आ रहे हो? अच्छा।

(टेलीफोन रखती हैं। शोभा का प्रवेश, उसने अंतिम बात सुन ली है।)

शोभा : किसे बुला रही हैं, जयंत को?

जीजी : हाँ, वह मान गया है, थोड़ी देर को आएगा जरूर।

शोभा : क्यों बुलाया आपने उसे? मैं कल शाम को जयंत को बुलाने गई इस बात पर क्या-क्या सुनाया है इन्होंने, जानती हैं आप? मैं अभी फोन कर देती हूँ कि कोई जरूरत नहीं है आने की।

(फ़ोन की ओर बढ़ती है। जीजी बीच में ही रोक लेती हैं।)

जीजी : शोभा, पागलपन मत करो। तुम सारी बात मुझ पर छोड़ दो। मैं चाहती हूँ आज की यह दावत केवल तुम्हारी नौकरी पक्की होने की ही नहीं, अजित और जयंत की सुलह की भी हो।

शोभा : ये और सुलह! जिसका दिल ईर्ष्या और संदेह से जल रहा हो वह क्या दोस्ती करेगा, निभाएगा!

जीजी : मैं जानती हूँ, शोभा, तुम अजित के ‹
उठी हो। पर यह तो सोचो कि कि
महीनों में वह किस भीषण यातना
उसका नियुक्ति-पत्र आ गया।

पत्र आ गया।

चावला : सच ? कब ?

अजित : कल ही आया है। पहली से शुरू करना है।

चावला : बधाई—बधाई ! भई, मान गए तुम्हें। उन्होंने भी सोचा होगा कि कंबख्त जिद ही करके बैठ गया है तो नौकरी दो और जान छुड़ाओ। (सब हँस पड़ते हैं)

शुक्ला : मैं तो, अजित तुम्हें लेकर कुछ चिंतित हो गया था। तीन जगह तुम्हारी बातचीत करीब-करीब तय हुई और तीनों जगहें तुमने महज बेवकूफी में छोड़ दी। मुझे तो लगने लगा था कि यह नौकरी तुम्हें नहीं मिली तो तुम बेकार ही रह जाओगे।

श्रीमती शुक्ला : रह भी जाते तो क्या था ? आपके यहाँ तो शोभाजी चला लेती हैं। ये तो एक महीने भी बेकार रह जाएँ तो हमारी तो भूखों मरने की ही नौबत आ जाए।

(श्री तथा श्रीमती चौधरी का प्रवेश)

अजित : आइए, चौधरी साहब !

चौधरी : मुबारक हो, शोभाजी ! भई, बड़ी खुशी है हमें तो। अपनों में से कोई बढ़ता है तो बड़ा अच्छा लगता है। फिर इस उम्र में प्रिंसिपल होना—सचमुच बड़ी बात है। (अजित से) क्यों अजित, तुम्हारा भी कुछ हुआ या नहीं।

शोभा : इनका भी कल बर्मा शैल से नियुक्ति-पत्र आ गया।

चौधरी : तुम्हें मुबारकबाद देने वाला नहीं हूँ, समझे। एक पार्टी में ही तुम सब चुकाना चाहते हो, सो चौधरी नहीं मानने का। (सब हँसते हैं)

(जोजी का प्रवेश। सब को नमस्कार करती हैं।)

(बीबी भीतर चली जाती है। शोभा बटुआ लेकर बाहर निकल जाती है। भीतर दरवाजा बंद करके भीतर जाता है। धीरे-धीरे रोशनी हल्की हो जाती है, धूल लगे हुए फूलदान रख जाता है। भीतर से अजित आता है, हाथ में अगरबत्तियाँ और माचिस लिए हुए। जला-कर आधी बत्तियाँ एक तरफ लगाता है। आधी जली हुई अगरबत्तियाँ लिए दूसरी ओर जाता है, बीच में रस्सी से पैर अटक जाता है, गिरते-गिरते बचता है। नीचे झुककर अप्पी की रस्सी उठाता है।)

अजित : यह रस्सी यहाँ पटक गई! अभी गिरते-गिरते बचा। पता नहीं इस लड़की को कब अक्ल आएगी!

(बत्तियाँ लाकर रस्सी लिए-लिए भीतर जाता है। घंटी बजती है। अजित आकर दरवाजा खोलता है। श्री तथा श्रीमती शुक्ला का प्रवेश।)

शुक्ला : बधाई हो—बधाई हो, अजित।

(शोभा का प्रवेश)

अजित : बधाई आप मुझे दे रहे हैं या शोभा को ?

शुक्ला : तुम्हें ? तुम्हें किस बात की, एकदम शोभाजी को दे रहे हैं। यों थोड़े बहुत हकदार तुम भी हो तो सही।

अजित : चाहो तो मुझे भी बधाई दे सकते हो। बर्मा शैल से मेरा नियुक्त-पत्र आ गया है।

शुक्ला : (हाथ मिलाते हुए) अरे वाह ! क्या खूब ! यह तो तुमने बड़ी अच्छी खबर सुनाई। हम तो, यार, बिल्कुल ही उम्मेद छोड़ चुके थे !

(श्री तथा श्रीमती चावला का प्रवेश)

शुक्ला : आओ, आओ।—यार चावला, अजित का भी नियुक्ति-

चावला : आप ऐसा कह रही हैं, शोभाजी ?

शोभा : हां, मैं कह रही हूं, कहिए !

चावला : देखिए, बुरा मानने की बात नहीं है। पर आपको खुद जयंत के कहने से नहीं मिली ? वरना तीन साल के तजुर्बे पर—

शोभा : (हल्के-से आवेश के साथ) मान लिया मिली पर मिलने से ही क्या होता है। बाद में तो मैंने—

चावला : (बात काटकर), बाद की बात आप छोड़िए !

शुक्ला : शोभाजी, आपकी तरकीब को हम मानते हैं। जयंत के द्वारा आपने नौकरी कर ली और बाद में उस साहनी को उल्लू बना लिया।

चौधरी : बना क्या लिया, वह तो है ही उल्लू !

चावला : भई, उल्लू बनने से ही यदि वह सब मौज मारने को मिल जाए तो मैं भी उल्लू बनने को तैयार हूं। मज़े करता है कंबख्त ! गोपियों में कृष्ण कन्हैया बना फिरता है !

शोभा : (गुस्से में) क्या मतलब है आपका ? कहना क्या चाह रहे हैं आप ?

शुक्ला : ओह, माफ कीजिए, शोभाजी, आप उसे अपने ऊपर मत लीजिए, मैं तो आम बात कर रहा था साहनी के बारे में। बदनाम तो अब वह है ही !

श्रीमती चौधरी : अरे बाबा, बदनाम ! बस भगवान बचाए उससे तो ! (शोभा का चेहरा तमतमा जाता है। अजित बड़ी तीखी नज़रों से उसे देखता है। शोभा दूसरी ओर मुंह फेर लेती है।)

चौधरी : (प्रसंग बदलते हुए) ऐसी की तैसी साहनी की। हमें तो

(सब लोग उठकर भीतर जाते हैं। भीतर से बोलने की आवाज़ें आती हैं। धीरे-धीरे रोशनी कम हो जाती है, आवाज़ मंदी पड़ती जाती हैं। फिर आवाज़ एकदम बंद, रंगमंच पर अन्धकार। रात के दस के क़रीब बजते हैं। शोभा भीतर से आकर बत्ती जलाती है, कमरा ठीक करती है। तभी घंटी बजती है। शोभा दरवाज़ा खोलती है। अजित का प्रवेश। सोफ़े पर बैठकर जूते खोलता है।)

शोभा : छोड़ आए चौधरी साहब को ?

अजित : छोड़ आया। (कुछ ठहरकर) तो हो गई आपकी दावत की हविस पूरी ?

(शोभा केवल अजित को घूरती है, जवाब नहीं देती।)

अजित : चलो, एक तरह से अच्छा ही हुआ। आज तुम्हारा एक भ्रम तो दूर हुआ।

शोभा : कौन-सा भ्रम ?

अजित : मैं कहता था तो तुमको लगता था कि मैं शक्की हूँ, दकियानूसी हूँ। (आवेश बढ़ जाता है) सुन लिया आज तो साफ़-साफ़ मुँह पर ही कह गए। सच बात कहने से तुम किसे-किसे रोकोगी, और कब तक रोकोगी ?

शोभा : क्या सोचते हैं, क्या कह गए ?

अजित : अच्छा-ऽ—! तो अभी भी समझ में नहीं आया ?

शोभा : मेरे पास करने को बहुत काम हैं। बेकार ही बैठी-बैठी बातों के अर्थ नहीं लगाया करती।

अजित : हाँ-ऽ-ऽ-। आप तो बड़ी कामकाजी हैं, बेकार और निकम्मा तो मैं हूँ। पर शोभाजी, जो बातें दिन के उजाले की तरह साफ़ हैं, उनका अर्थ लगाने के लिए बैठकर मग़ज़मारी नहीं करनी पड़ती, समझीं ! (कुछ ठहरकर) बच्चा-बच्चा जानता है कि जयंत की वजह से तुम्हें यह नौकरी मिली है, उस लफ़ंगे साहनी को ख़ुश करके

चलकर जाऊँगी, और बहुत जल्दी ही जाऊँगी। आप कहें तो हाथ देखकर बताऊँ आपका ?

शुक्ला : आप नहीं जाएँगी तो ये लोग (श्रीमती शुक्ला, श्रीमती चावला आदि की ओर संकेत करता है) जाएँगी जो सारा दिन घर में बैठी-बैठी अपने बच्चों और पतियों में ही मगन रहती हैं। आदमी में हिम्मत होनी चाहिए।

श्रीमती शुक्ला : (चिढ़कर, हिम्मत नहीं है ना न सही, कम से कम अपनी इज्जत तो लेकर बैठे हैं।

शोभा : (क्रोध से) आप क्या कहना चाह रही हैं, श्रीमती शुक्ला? साफ-साफ कहिए न।

श्रीमती शुक्ला : तुम तुनकती क्यों हो, शोभा ? मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं कह रही। आजकल जिस औरतों की हिम्मत कहते हैं, उसी की बात कह रही थी। औरत जरा-सा अपने को ढीला छोड़ दे तो कहाँ की कहाँ जा सकती है। औरतें क्या, आजकल तो आदमी भी अपनी बीवियों के बूते पर तरक्की करना बुरा नहीं समझते।

शोभा : (आवेश में) हाँ, जिनके पास अपना कुछ नहीं होता उन्हें तो तरक्की के साथ सभी रास्ते अपनाने पड़ते हैं।

चावला : और यह पहचानना बड़ा मुश्किल है कि आदमी की तरक्की में कितना उसका निज का हाथ है और कितना—

जयंत : (व्यंग से) पर किसी की तरक्की को हम अपना सिरदर्द बनाएँ ही क्यों ?

(जीजी का प्रवेश)

जीजी : चलिए खाना तैयार है (जयंत को देखकर) तुम कब आए, जयंत ? इतनी देर तक कहाँ अटके रहे ?

जयंत : बस, यों ही जरा काम आ गया था।

चौधरी : (उठते हुए) बड़ी देर से मैं तो सुगंध से ही पेट भर रहा था। चलिए, अब खाने पर धावा जाए।

(सब लोग उठकर भीतर जाते हैं। भीतर से बोलने की आवाजें आती हैं। धीरे-धीरे रोशनी कम हो जाती है, आवाज मंदी पड़ती जाती है। फिर आवाज एकदम बंद, रंगमंच पर अन्धकार। रात के दस के क़रीब बजते हैं। शोभा भीतर से आकर बत्ती जलाती है, कमरा ठीक करती है। तभी घंटी बजती है। शोभा दरवाजा खोलती है। अजित का प्रवेश। सोफे पर बैठकर जूते खोलता है।)

शोभा : छोड़ आए चौधरी साहब को ?

अजित : छोड़ आया। (कुछ ठहरकर) तो हो गई आपकी दावत की हविस पूरी ?

(शोभा केवल अजित को घूरती है, जवाब नहीं देती।)

अजित : चलो, एक तरह से अच्छा ही हुआ। आज तुम्हारा एक भ्रम तो दूर हुआ।

शोभा : कौन-सा भ्रम ?

अजित : मैं कहता था तो तुमको लगता था कि मैं शक्की हूँ, दकियानूसी हूँ। (आवेश बढ़ जाता है) सुन लिया आज तो साफ़-साफ़ मुँह पर ही कह गए। सब बात कहने से तुम किसे-किसे रोकोगी, और कब तक रोकोगी ?

शोभा : क्या सोचते हैं, क्या कह गए ?

अजित : अच्छा-ऽ —! तो अभी भी समझ में नहीं आया ?

शोभा : मेरे पास करने को बहुत काम हैं। बेकार ही बैठी-बैठी बातों के अर्थ नहीं लगाया करती।

अजित : हाँ-ऽ-ऽ-। आप तो बड़ी कामकाजी हैं, बेकार और निकम्मा तो मैं हूँ। पर शोभाजी, जो बातें दिन के उजाले की तरह साफ़ हैं, उनका अर्थ लगाने के लिए बैठकर मग़ज़मारी नहीं करनी पड़ती, समझीं ! (कुछ ठहरकर) बच्चा-बच्चा जानता है कि जयंत की वजह से तुम्हें यह नौकरी मिली है, उस लफंगे . . को खुश करके

शोभा : मैं इस घर में नहीं रहूँगी, जीजी —एक दिन भी न
रहूँगी - (जीजी उसे जबरदस्ती ले जाती है)
(अजित जोर-जोर से कश खींचकर सिगरेट पीता है
परेशान-सा कमरे में चक्कर लगाता है। धीरे-धीरे मंच
कार हो जाता है।)

(दूसरा दृश्य)

(संध्या के सात बजे। अजित कमरे में टहल रहा है। बाहर से जीजी का प्रवेश। अजित मानो उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहा था, कुछ पूछना चाह रहा है, पर पूछता नहीं।)

जीजी : मैं मिलकर आ रही हूँ शोभा से। (अजित केवल जीजी की ओर उत्सुकता से देखता है) वह आने को तैयार नहीं है। वह अब नहीं आएगी।

अजित : ठीक है। (सिगरेट फेंकते हुए) मैंने तो आपसे पहले ही कहा था, जाना बेकार है। क्यों गई थी आप?

जीजी : (क्रोध से) क्यों गयी थी? सूरत देखी अपनी शीशे में? हालत देखी है घर की, उस मासूम बच्ची की? रो-रोकर बेचारी पड़ गयी। तुम उसके बाप हो! सुन लो अजित, शोभा के बिना मुझसे भी कुछ नहीं होने का!

अजित : तो क्या करूँ मैं? आपसे नहीं होता तो आप चली जाइए! मैं भी ऑफिस जाना छोड़ दूँगा। कह दूँगा मेरी बच्ची बिमार है, उसकी माँ उसे छोड़ गई – मर गई। (एकदम फूट पड़ता है)

जीजी : (बहुत ही स्निग्ध स्वर में) अजित! सब कुछ समझते हो, महसूस करते हो, फिर क्यों बेकार की जिद किए

मतलब नहीं। तुम नौकरी में थे तो मैंने अपने लिए गहने नहीं गढ़वा लिये थे, और बेकार रहे तो मैं भूखों नहीं मर गई, समझे ? मुझे तुम्हारे घर से कुछ चाहिए भी नहीं, बस यही चाहती हूँ इस घर का बुरा न हो, वरना मुझे यह घर भी छोड़ देना पड़ेगा। (स्वर भर्रा जाता है)

अजित : (एक दम उठकर जीजी के पास जाकर) जीजी, यह आप क्या कह रही हैं ? ऐसी बातें भी आपके दिमाग में क्यों आई ? कौन कहता है कि आप —

जीजी : किसी के कहने की जरूरत नहीं है। मैं क्या समझती नहीं ? आई हूँ तबसे बराबर ये कोशिश करती रही हूँ कि इस घर का कुछ अमगल न हो। तुम दोनों को समझाती-बुझाती रही हूँ, पर सब बेकार। कहीं कोई ऐसा ठोस कारण नहीं, कोई बात नहीं। फिर भी घर है कि टूटता ही जा रहा है, तुम दोनों दूर होते ही जा रहे हो। बताओ, मेरी मनहूस छाया नहीं है तो क्या है इस सबके पीछे ? मुझे भेज दो भैया—वापस कानपुर ही भेज दो।

अजित : (बहुत स्नेह से) जीजी, आप यह सब कह-सोचकर मुझे और अधिक दुखी बनाना चाहती हैं तो ज़रूर बनाइए। पर आपको जाने कहीं नहीं दूँगा। इतनी बड़ी दुनिया में आपके सिवाय आज मेरा है ही कौन ? मैंने आपसे माँ का प्यार पाया है, दोस्त का विश्वास पाया है। आप भी छोड़ जाएँगी तो क्या होगा मेरा ? (गला भर्रा जाता है)

जीजी : (आँसू पोंछते हुए) यदि तुम सचमुच ही मुझे रखना चाहते हो तो जाकर शोभा को ले आओ ! , अप्पी को तुमने जाने नहीं दिया, अपनी जिद की सज़ा उस बच्ची को क्यों दे रहे हो ? माँ के रहते उसे बे माँ का क्यों कर रहे हो ? कैसे बाप हो तुम ?

कर जाती है। भीतर से नौकर का प्रवेश। बाहर से अजित और डॉक्टर का प्रवेश।)

नौकर : बीबीजी आ गई सरकार। बस तुरत ही आई हैं।

(अजित हल्की-सी दुविधा में रहता है कि भीतर जाए या नहीं, फिर डॉक्टर को लेकर चला जाता है। । कर भी डॉक्टर का बैग लेकर पीछे-पीछे जाता है, फिर लौट आता है। गद्दी आदि ठीक करता है। सोफे पर पड़ा अजित का बैग उठाकर ठीक जगह रखता है। भीतर से अजित और डॉक्टर का प्रवेश।)

डॉक्टर : चिंता की कोई बात नहीं है, मामूली बुखार है। मैं दवाई लिए देता हूँ—ठीक हो जाएगी। (बैठकर दवाई लिखता है) तीन-तीन घंटे में इसे दीजिए। खाने को अभी रस या साबूदाना मात्र ही दीजिए—और तो बस।

(अजित फीस देता है। दरवाजे तक छोड़कर लौट आता है।)

अजित : (नौकर से) यह दवाई लेते आओ।

(बटुए में से रुपए देता है। नौकर का प्रस्थान। भीतर से जीजी आती हैं।)

जीजी : गए डॉक्टर साहब ? क्या बताया ?

अजित : चिंता की कोई बात नहीं है। मामूली बुखार है! दो एक दिन में ठीक हो जाएगा। बल्लू को दवाई लेने भेजा है।

जीजी : यह तो मुझे भी मालूम था कि चिंता की कोई बात नहीं होगी, पर—(अजित अखबार उठाकर पढ़ने लगता है) कुछ देर भीतर जाकर ही बैठो न! (अजित आँख उठाकर जीजी को देखता भर है) देखो अजित, अब तो समझ से काम लो! अपनी ज़रा-सी ज़िद से तीन-तीन ज़िंदगियाँ मत खराब करो।

भी आता है। कुछ देर रंगमंच खाली रहता है। फिर भीतर से जीजी आती हैं। टेलीफ़ोन उठाकर नंबर मिलाती हैं।)

जीजी : हलो-हलो, जी, ग्यारह नंबर के कमरे में दीजिए। हलो-हलो। कौन शोभा? मैं जीजी बोल रही हूँ, शोभा। देखो, अन्नी का बुखार तेज हो गया है। उठते ही मम्मी-मम्मी करके रो रही है। अपनी बच्ची की खातिर ही तुम आ जाओ, शोभा। एक बार उसकी हालत देख जाओ, फिर जो भी तुम्हारी समझ में आए करना।—हाँ, फ़ौरन आओ! अजित को मैं डॉक्टर को लेने के लिए भेज रही हूँ—तुम तुरंत आओ!'

(टेलिफ़ोन रखकर भीतर चली जाती है। भीतर से अजित का प्रवेश। बाहर जाने के लिये तैयार होकर आया है। मेज से गाड़ी की चाबी उठाता है। नौकर आता है।)

नौकर : मालकिन ने कहा है आते समय मौसमी भी लेते आइए एक दर्जन।

अजित : ठीक है!

(अजित का प्रस्थान। जीजी आती हैं)

जीजी : साहब चले गए?

नौकर : अभी-अभी निकले हैं।

जीजी : अरे, ग्लूकोस को कहना ही भूल गई। तू ला सकेगा?

नौकर : नाम लिख दीजिये तो ला सकेंगे, बाकी—

जीजी : हाँ-हाँ लिखे देती हूँ। (भीतर जाती हैं। पीछे-पीछे नौकर भी चला जाता है।)

(शोभा का प्रवेश। एक क्षण को कमरे में चारों ओर देखती है, फिर भीतर के दरवाजे की ओर बढ़ती है।) दरवाजे पर जरा-सा ठिठक जाती है, फिर पर्दा खोल

कर जाती है। भीतर से नौकर का प्रवेश। बाहर से अजित और डॉक्टर का प्रवेश।)

नौकर : बीवीजी आ गई सरकार। बस तुरत ही आई हैं।
(अजित हलकी-सी दुविधा में रहता है कि भीतर जाए या नहीं, फिर डॉक्टर को लेकर चला जाता है। नौकर भी डॉक्टर का बैग लेकर पीछे-पीछे जाता है, फिर लौट आता है। गद्दी आदि ठीक करता है। सोफे पर पड़ा अजित का बैग उठाकर ठीक जगह रखता है। भीतर से अजित और डॉक्टर का प्रवेश।)

डॉक्टर : चिंता की कोई बात नहीं है, मामूली बुखार है। मैं दवाई दिए देता हूँ—ठीक हो जाएगी। (बैठकर दवाई लिखता है) तीन-तीन घंटे में इसे दीजिए। खाने को अभी रस या साबूदाना आदि ही दीजिए—और तो बस।
(अजित फीस देता है। दरवाजे तक छोड़कर लौट आता है।)

अजित (नौकर से) यह दवाई लेते आओ।
(बटुए में से रुपए देता है। नौकर का प्रस्थान। भीतर से जीजी आती हैं।)

जीजी : गए डॉक्टर साहब ? क्या बताया ?

अजित : चिंता की कोई बात नहीं है। मामूली बुखार है। एक दिन में ठीक हो जाएगा। बल्लू को दवाई लेने भेजा है।

अजित : ऐसा क्या कर रहा हूँ, जीजी ? मैं तो चुपचाप बैठा हूँ।

जीजी : हाँ, तो क्यों बैठे हो चुपचाप ? करो न कुछ ।

अजित : क्या करूँ जीजी ? कहा न सब ठीक हो जाएगा। आप देखिए, सब ठीक हो जाएगा।

जीजी : अब तुमको जयत से भी बोलचाल शुरू कर देनी चाहिए अजित ! जानते हो। मैं जब शोभा के पास गई थी उसने आने से इनकार कर दिया था। उसे विश्वास ही नहीं हुआ था कि अप्पी बीमार है। घर आकर फोन किया तो जयत ने उसे जैसे-तैसे यहाँ के लिए तैयार किया, खुद अपनी गाड़ी में यहाँ आकर छोड़ गया। वरना तो वह फोन से भी नहीं आती शायद। (अजित चुप रहता है) देखो अजित, अधिक मैं कुछ नहीं कहूँगी, पर इतना जान लो, अब कुछ भी गड़बड़ हुई तो सारा दोष तुम्हारा होगा। शोभा एक बार लौट आई है, अब उसे मनाना तुम्हारा काम है। अपनी ग़लती मानकर आदमी छोटा नहीं होता, समझे ?

(नौकर का प्रवेश)

नौकर : यह एक दवाई तो यहाँ मिली नहीं, साहब !

अजित : देखूं ? (देखता है)

जीजी : तुम गौतम फर्मेसी से ले आओ !

अजित : जाता हूँ।

(बाहर जाता है। जीजी और नौकर दरवाज़ा बंद कर के भीतर जाते हैं। धीरे-धीरे अंधकार होता है।)

(तीसरा दृश्य)

(कमरा खाली पड़ा है। भीतर से शोभा और डाक्टर का प्रवेश।)

शोभा : तो डॉक्टर साहब मैं इसे अपने साथ कुछ समय के लिए बाहर ले जा सकती हूँ ?

डॉक्टर : हाँ-हाँ, अब तो यह बिल्कुल ठीक है। एकदम ठीक। पर आप इसे कहाँ ले जाएँगी ?

(शोभा के होंठों पर फीकी-सी मुस्कान फैल जाती है। डाक्टर चले जाते हैं। शोभा भीतर जाती है। अजित बाहर से आता है। सोफे पर बैठकर जूते उतारता है।)

शोभा : (एक क्षण समझ नहीं पाती क्या बताइए) मुझे जरूरी काम से जरा कलकत्ते से बाहर जाना है, इसीलिए पूछ रहा था—

डॉक्टर : हाँ-हाँ—। खुशी से ले जा सकती हैं। ऐसा बच्ची को कुछ था भी नहीं। एक ही बच्ची है न, इसलिए [illegible] आप लोग बहुत जल्दी घबरा जाते हैं। एक [illegible] होना चाहिए !

[illegible] : बल्लू —ओ बल्लू —!

(जीजो का प्रवेश)

से बंद कर रखा है। आखिर क्या चाहते हो तुम ?

अजित : मैं ? मैं तो कुछ नहीं चाहता, जीजी !

जीजी : समझदारी से काम लो, अजित। डोरी इतनी ही खींचनी चाहिए कि टूटे नहीं।

अजित : (खिन्न-से स्वर से) डोर तो टूट चुकी है, जीजी !

जीजी : पागल है, कहीं कुछ नहीं टूटा। जो कुछ टूटा भी है उसे जोड़ लो !

अजित : क्या करूँ, कैसे जोड़ लूँ ?

जीजी : यह सब मेरे बताने की बातें नहीं हैं, तुम्हारे करने समझने-करने की बातें हैं। शोभा भी तो आजकल कुछ नहीं बोलती। पहले तो मन की बात कहा करती थी, अपना सुख-दुख बताया करती थी। अब तो हाँ-ना के सिवाय उसके मुँह से भी कुछ नहीं निकलता। सारे दिन बैठी-बैठी कुछ सोचती रहती है। कभी-कभी मुन्नी को *चिपटा कर रोती है। उसका दर्द मैं समझती हूँ, अजित* वह लौटकर आई और तुमने सूखे मुँह से बात तक नहीं की उससे ! कितना अपमानित महसूस कर रही होगी वह !

अजित : मेरी कुछ समझ में नहीं आता, जीजी, मैं क्या बात करूँ ? *(कुछ ठहरकर)* कॉलेज में इस्तीफा भेज ही *दिया क्या ? कॉलेज तो नहीं जाती !*

जीजी : हो सकता है भेज दिया हो ! मैंने कहा न वह मुझसे भी कोई बात नहीं करती है आजकल। (नौकर चाय लेकर आता है। जीजी चाय बनाती है) शोभा अब किसी की भी बात नहीं सुन सकती, चाहे साहनी साहब हों चाहे लाट साब ! वे कॉलेज के सेक्रे*टरी हैं, निजी बातों से उन्हें क्या मतलब ?*

(नौकर का प्रवेश)

नौकर : मालकिन, पीछे वालों की बिटिया आपको बुलाने आई है, उधर की बीबीजी ने बुलाया है।

जीजी : किसे मुझे ?

नौकर : जी, कोई जरूरी काम है !

जीजी : अच्छा, चलो।

(नौकर और जीजी का प्रस्थान। अजित अकेला बैठा चाय पीता रहता है। भीतर से शोभा का प्रवेश। एक क्षण खड़ी रहती है।)

शोभा : (बैठते हुए) मैं बना लूंगी। (चाय बनाने लगती है)

अजित : अप्पी अब तो बिलकुल ठीक है न ? डॉक्टर आए थे ?

शोभा : आए थे, कह गए कि बिलकुल ठीक है। अब कहीं भी आ-जा सकती है।

अजित : तो कल से उसे स्कूल जाना शुरू कर देना चाहिए।

शोभा : मैं उसे अपने साथ ले जाना चाहती हूँ।

अजित : (माथे पर बल पड़ जाते हैं) कहाँ ?

शोभा : जहाँ भी मैं रहूँ। चाहती हूँ वह मेरे साथ ही रहे। पहले भी आपने व्यर्थ ही जिद करके उसे रोक लिया। मेरे बिना वह रह नहीं सकती।

अजित : (एक मिनिट शोभा को देखता रहता है) देखो शोभा, मैं जानता हूँ कि तुम्हारे किसी भी मामले में दखल देने का अधिकार मुझे नहीं है। पर अप्पी के मामले में तो कम से कम—

शोभा : यही सब कहकर तो आपने पहले भी उसे रख लिया था। फिर क्या हुआ ? इस बार मैं उसे साथ लेकर ही जाऊँगी !

अजित : (एक मिनिट ठहरकर) सुना है, तुमने नौकरी से इस्तीफा दे दिया है। जान सकता हूँ अप्पी के रहने की क्या